hindumantavya.blogspot.in

नियोग्

दयानंदभाष्य खंडनम्

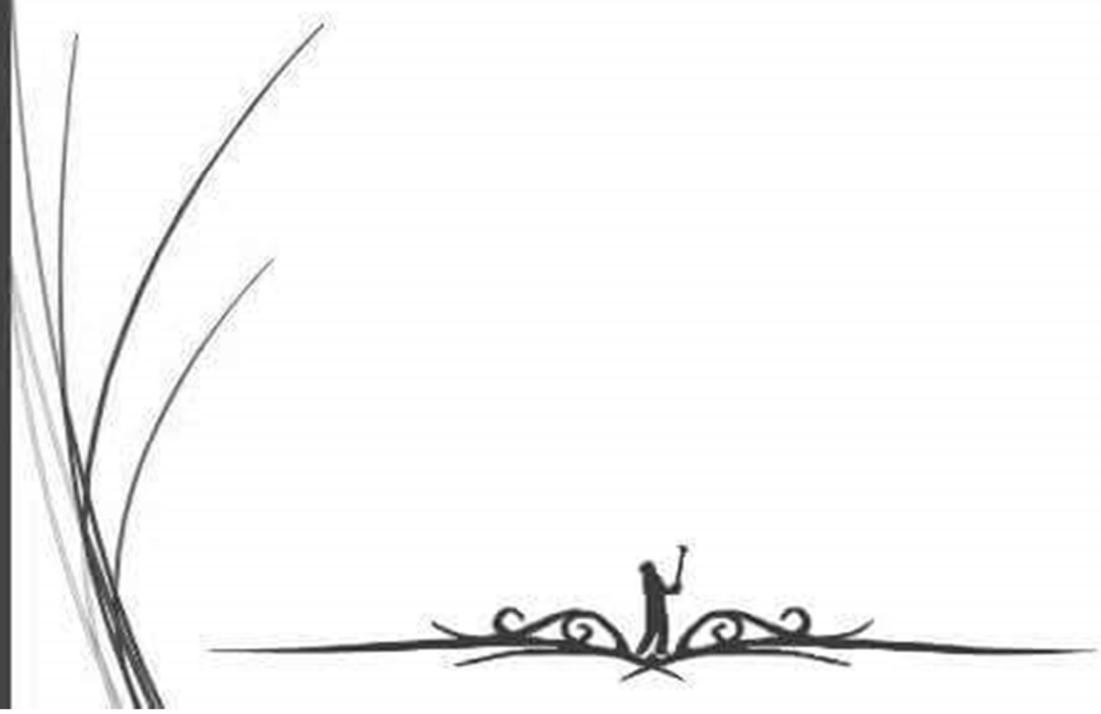

दयानंद का कामशास्त्र
वेदभाष्य या फिर कामशास्त्र

जिन भड़वे समाजियों का उद्देश्य सनातन धर्म ग्रंथों के उदाहरणों को गलत संदर्भ में प्रस्तुत करते हुए- धर्म के न जानने वालों के बीच भ्रम का भाव उत्पन्न कर उन्हें धर्म के मार्ग से विमुख करना है सनातनधर्मियों को अपमानित करना व उन्हें नीचा दिखाना, धर्म विरोधीयों की सहायता करना आदि हैं, उनके लिए सप्रेम ----------

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-१)

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्लुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनग्वगं शेपेन प्रजाग्वं रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः॥ ~यजुर्वेद {अध्याय २५, मंत्र ७}

दयानंद अपने यजुर्वेदभाष्य में इस मंत्र का अर्थ यह लिखते हैं कि---

हे मनुष्यों! तुम मांगने से पुष्टि करने वालों को स्थूल गुदेंद्रियों के साथ वर्तमान, अंधे सर्पों को गुदेंद्रियों के साथ वर्तमान विशेष कुटिल सर्पों को आंतों से, जलों को नाभि के नीचे के भाग से, अंडकोष को आंडों से, घोडे के लिंग और वीर्य से संतान को, पित्त से भोजनों को, पेट के अंगो को गुदेंद्रिय और शक्तियों से शिखावटों को निरंतर लेओं।

समीक्षक-- अब कोई इन नियोग समाजीयों से यह पूछे कि उन्हें दयानंद द्वारा किये गये अधिकांश मंत्रो के ऐसे अर्थ अश्लील क्यों नहीं लगते? और

जब इस वेद ऋचा की ही भांति इन्हें अन्य सनातनी धर्म ग्रथों मे कोई श्रुति या श्लोक दिख जाता हैं तो अपनी बुद्धि अनुसार ही उसके अर्थ का अनर्थ कर आप्त पुरूषों द्वारा रचित ग्रंथों का अपमान करते है और उल्टा सनातनधर्मियों और उनके शास्त्रकारों को-- धूर्त, निशाचर, पाखंडी, नीच और न जाने कितनी गालियाँ देते हैं,

तो अब नियोग समाजी हमें बताए कि दयानंद के इन भाष्यों के बारे में उनकी क्या राय है? दयानंद द्वारा किया यह अर्थ उन्हें अश्लील लगता है या नहीं।

प्रश्न १• दयानंदी हमें बताए कि अंधे सर्पों को गुदा में घुसाने और कुटिल सर्पों को आंतों से लेने की आज्ञा क्या ईश्वर ने देता हैं?

यदि देता है तो समाजी दिन में ये कितनी बार लेते हैं?

प्रश्न २• दयानंदी हमें बताये अंधे कुटिल सर्पों और अश्व के लिंग को गुदा व आंतों में निरंतर लेते रहने के पीछे का विज्ञान समझाए .

प्रश्न ३• दयानंदी गुदा व आंतों में अंधे कुटिल सर्पों एवं अश्व के लिंग को निरंतर लेते रहने की विशेष युक्ति का खुलासा करें, क्योकि दयानंदीयों के सर्पों के साथ इस कृत्य की कल्पना करके भी, हमारी समझ से तो बाहर हैं कि सर्पों को ये किस युक्ति से प्रवेश देते होंगें ?

प्रश्न ४• सर्पों को गुदेंद्रिय में लेने की आवश्यकता क्या हैं? गुदेंद्रिय आनंद ही अगर अपेक्षित हैं, तो सर्प के समान आकार वाली अन्य वस्तुओं का विकल्प भी तो है न आपके लिए? और यदि लेते समय साँप घबराकर आपको अंदर या बाहर से काट लेवें, तो वैद्य के पास जाकर क्या कहोगें अभागों?

प्रश्न ५• और अंधा सर्प ही क्यो? आँख वाले सर्पों से क्या गुदेंद्रियों को नजर लगने का भय हैं?

प्रश्न ६• अर्थ मे आता हैं कि - "अंडकोष को आंडों से निरंतर लेओं" अब दयानंदी पहले तो अंडकोष और आंडों के बीच का अंतर बतायें, और फिर ये बतायें कि अंडकोष से आडों को किस प्रकार लिया जा सकता हैं?

उचित होता यदि दयानंदी गुरु आज्ञा का पालन करते हुए स्वामी जी की ही गुदा में दो चार अंधहीन सर्प छोड़ देते, और स्वामी जी को निरंतर अश्व का लिंग ग्रहण कराते रहते, तब जाकर कहीं गुरु आज्ञा का फल प्रकट होता,

अब कोई अनार्य समाजी ये न कहें कि इसका मतलब ये नहीं है, वो नहीं हैं, फलाना हैं, तो ढिमाका हैं ... क्योकि यही बात जब हम आप लोगों को समझाते हैं तो बुद्धि और विवेक को एक तरफ रखकर आप लोग केवल शब्दों को ही पकड़ के बैठे रहते हो,

देखिये दयानंद सत्यार्थ प्रकाश के द्वादश समुल्लास में महीधरादि पर अश्लील भाष्य करने का आरोप लगाते हुए लिखते हैं-- **“हां! भांड धूर्त्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं, उन की धूर्त्तत्ता है; वेदों की नहीं”**

क्या यह बात इस भडवे दयानंद पर लागू नहीं होती? बिल्कुल होती है, अत: पाठकगणों से निवेदन है कि वो इस बात को समझें की दयानंद ने जो ये अश्लील भाष्य किया है वो इस भांड धूर्त्त निशाचरवत् दयानंद की धूर्तता है, वेदों की नहीं, देखिये इस श्रुति का सही अर्थ इस प्रकार है

शंका समाधान-

"इस मंत्र में आहूति द्वारा, पाचन संबंधी विभिन्न अंगों में उपस्थित भिन्न-भिन्न शक्तियों को उनसे संबंधित देवों की प्रसन्नता के लिए समर्पित किया गया है सभी की शक्तियाँ देव प्रयोजनों के लिए समर्पित हो, ऐसा जानकर रोगमुक्त स्वस्थ जीवन की प्रार्थना की गई है, यह एक आदर्श संगठनात्मक विद्या है, देखिए क्या कहता है ये मंत्र--

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्स्थूलगुदया सर्पान्गुदाभिर्विह्लुत आन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनग्वगं शेपेन प्रजाग्वं रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्माञ्छकपिण्डैः॥ ~यजुर्वेद {२५/७}

(पूषणं वनिष्ठुना स्थूलगुदया)- स्थूल आंतों व गुदा, पाचन संबंधी अंगों का भाग पूषण देवता के लिए, हे पूषण देव हमारे पाचन तंत्र संबंधी अंगों को स्वस्थ कर शरीर की व्याधियाँ उसी प्रकार दूर करें, जिस प्रकार, (अन्धाहीन सर्पान)- अंधहीन सर्प आपने बांबी से दूर निकल जाते है, (गुदाभिर्विह्लुत आन्त्रैरपो)- और हे विह्वत देव गुदा से संबंधी अन्य व्याधियों को दूर कर हमें रोगमुक्त स्वस्थ जीवन प्रदान करें, इस प्रकार (वस्तिना)- वस्ति भाग जल के लिए, (वृषणमाण्डाभ्यां)- अंडकोशों की शक्ति वृषण देव के लिए, (वाजिनं)- उपस्थ की शक्ति वाजीदेव के लिए, (रेतसा)- विर्य प्रजा की रक्षा के लिए, (चाषान् पित्तेन)- पित चाष देव के लिए, (प्रदरान् पायुना)- आंतों का तृतीया भाग प्रसरदेवों के लिए, (कूश्माञ्छकपिण्डैः)- तथा शकपिण्डों को कूश्म देव की प्रसन्नता के लिए समर्पित करते हुए रोगमुक्त, स्वस्थ जीवन की कामना करते हैं,

और भांड दयानंद ने इसके अर्थ का क्या अनर्थ किया है, वो आप लोगों के सामने है,

तो मेरे नवीन समाजी भाईयों आगे बढ़ें और दयानंद की थुत पर चार जूते मारकर भांड दयानंद द्वारा किए गए इन अश्लील भाष्यों का विरोध करें....

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-२)

शादं दन्द्विर् अवकां दन्तमूलैर् मृदं बस्वैंस् तेगान्दमंष्ट्राभ्याम् सरस्वत्या ऽ अग्रजिह्वं जिह्वाया ऽ उत्सादम् अवक्रन्देन तालु वाजमँ्हनुभ्याम् अप ऽ आस्येन वृषणम् आण्डाभ्याम् आदित्यामँ् श्मश्रुभिः पन्थानं भ्रूभ्यां द्यावापृथिवी वर्तोभ्यां विद्युतं कनीनकाभ्याम् शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय

स्वाहा पार्याणि पक्ष्माण्य् अवार्या ऽ इक्षवो वार्याणि पक्ष्माणि पार्या ऽ इक्षवः॥ ~यजुर्वेद {अध्याय २५, मंत्र १}

दयानंद अपने यजुर्वेदभाष्य में इस मंत्र का अर्थ यह लिखते हैं कि---

"हे अच्छे ज्ञान की चाहना करते हुए ज्ञानी जन! ,,,,,,,,,////// (आण्डाभ्याम्)- वीर्य को अच्छे प्रकार धारण करनेहारे आण्डों से, (वृषणम्)- वीर्य वर्षानेवाली अंग {लिंग} को, (श्मश्रुभिः)- मुख के चारों ओर जो केश, अर्थात डाढ़ी उससे,,,,,,,,, /////वे पदार्थ अच्छे प्रकार ग्रहण करने चाहिए

समीक्षक-- दिन रात जहाँ तहाँ अश्लीलता ढुढने वाले दयानंदीयों तुम्हें दयानंद द्वारा किए ये अश्लील भाष्य नजर क्यों नहीं आतें, तुम्हारे दयानंद ने तो अपनी अश्लील बुद्धि से ईश्वरीय ज्ञान वेदों को भी अश्लील बना दिया,

प्रश्न १• दयानंदी बतायें कि क्या ईश्वर मनुष्यों को यही उपदेश करता है जैसे कि दयानंद ने इस श्रुति का अर्थ किया है?

प्रश्न २• दयानंदी बतायें कि दयानंद अपने भाष्य द्वारा आण्डों, वीर्य वर्षाने वाले अंग लिंग और डाढ़ी से ऐसा कौन सा ईश्वरीय ज्ञान बाँट रहा है?

प्रश्न ३• दयानंदी बतायें यदि यह ईश्वरीय अज्ञा है तो दयानंद के भाष्यानुसार वे लिंग एवं आण्डों को अपने मुख के चारों ओर दिन में कितनी बार ग्रहण करते है?

प्रश्न ४• दयानंदी आण्डों, एंव लिंग को मुख के चारों ओर ग्रहण करने की विशेष युक्ति के साथ साथ उसके पिछे का वैज्ञानिक रहस्य समझाए,

प्रश्न ५• दयानंदी बतायें कि वे मुख के चारों ओर केवल पुरुषों के आण्डों एवं लिंग को ग्रहण करते हैं या फिर गधे घोड़े आदि पशुओं का भी ग्रहण करते हैं,

प्रश्न ६• दयानंदी बतायें कि वह इस कृत्य को प्रतिदिन दोहराते हैं या फिर समाज के किसी वार्षिक उत्सव पर?

हम यह भलीभाँति जानते हैं कि इन धूर्त समाजीयों के पास इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं है, और ना ही वह इसका उत्तर देना चाहेंगे, यह प्रश्न समाजीयों के हृदय में तीर की तरह चुभ रहे होंगे, क्योकि आज से पहले उन्होंने दयानंद के यह भाष्य नहीं पढे होगें, क्योकि उन्हें दूसरों की निंदा करने से फुर्सत ही कहाँ है जो दूसरों से पहले एकबार निष्पक्ष भाव से दयानंद द्वारा किये इन अर्थ को पढ लेते तो तुरन्त समाज का त्याग कर देतें, दयानंद ने वेदभाष्य के नाम पर सिर्फ अर्थ का अनर्थ ही किया है, इन श्रुतियों का अर्थ ऐसा बिलकुल नहीं है, देखिये-

अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत वनस्पति याग एवं स्विष्टकृत् आहुतियों के क्रम में विशेष आहुतियाँ प्रदान कि जाती है, इस आहुति में प्राणियों के विभिन्न अंगों में स्थित शक्तियों को देव प्रयोजनों के लिए समर्पित किया जाता है, अश्वमेध यज्ञ राष्ट्र संगठन के अर्थ में प्रयुक्त है, यह आदर्श संगठनात्मक विद्या है, सुनिये इस श्रुति का अर्थ यह है कि--

दांतों की शक्ति से शाद देवता को, दंतमूल से अवका देवता को, दांतों के पश्च भाग से मृद देवता को, दाढ़ों से तेगदेवता को, जिह्वा के अग्र भाग से सरस्वती को, एवं जिह्वा से उत्साद देवता को प्रसन्न करते हैं, तालु की शक्ति से अवक्रन्द देवता को, ठोढी हे अन्न देवता को, मुख से जल देवता को प्रसन्न करते हैं, वृषणों से वृषण देवता को, दाढी से आदित्यों को, भौं से पन्थ देवता को, पलक लोमों से पृथ्वी एवं द्युलोक को, तथा आँख की पुतलियों से विद्युत् देवता को प्रसन्न करते हैं, शुक्ल एवं कृष्ण देव शक्तियों के निमित्त यह आहुति समर्पित है, नेत्रों के नीचे एवं ऊपर के लोमों से 'पार' एवं 'अवार' देवशक्तियों को प्रसन्न करते हैं।

अब दयानंदी बतायें कि इस श्रुति का जो अर्थ दयानंद ने किया है उसमें यह अश्लील शब्द कहाँ से आ गये, इस श्रुति से दयानंद का किया कल्पित

और अश्लील अर्थ किंचित् मात्र भी सम्बन्ध नहीं रखता, जबकि दयानंद का किया यह अर्थ अश्लील के साथ साथ निरर्थक भी है, दयानंद के इन अश्लील भाष्यों का कोई आशय ही नहीं निकलता, क्या दयानंदीयों को दयानंद द्वारा किये यह अश्लीलभाष्य नजर नहीं आते, या दयानंद के भाष्य पढने से पहले इस भाष्यानुसार मुहँ और आँखों में टोपा ले लेते हो जिस कारण तुम्हें यह अश्लीलभाष्य दिखाई नहीं पड़ते, यदि ऐसा है तो कुछ और बात है दयानंद की बात आने पर शायद कान में भी ले लेते होगे जिससे तुम्हें सुनाई भी न पडता होगा, बुद्धिमान स्वयं विचारें क्या यह दयानंदीयों का दौगलापन नही है, जो प्रत्यक्ष है उन दयानंदभाष्यों पर तो इनकी बोलती बंद हो जाती है और जहाँ नहीं दिखता वहाँ अपना वही पुराना रंd! रौना रोते है कि फला ग्रंथ में अश्लीलता है तो इस ग्रंथ में अश्लीलता है इसलिए यह हमें मान्य नहीं, अबे तो तुम्हें पूछता ही कौन है? कौन कहता है कि तुम इन्हें मानों जी करता है तो मानों नहीं करता है तो मत मानों पर कम से कम यह अपना रंd! रौना तो बंद करों

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-३)

यजुर्वेद अध्याय १९, मंत्र ७६, भांड दयानंद ने इस मंत्र के अर्थ का जो अनर्थ किया है, वो तो किसी को बताने योग्य भी नहीं, इस प्रकार का अश्लील लेख या तो आपको सेक्सी उपन्यासों में या फिर दयानंद द्वारा लिखित कामशास्त्र में ही पढने को मिल सकता है, देखिए क्या लिखता है ये भांड--

रेतो मूत्रं वि जहाति योनिं प्रविशद् इन्द्रियम्। गर्भो जरायुणावृत ऽ उल्वं जहाति जन्मना। ऋतेन सत्यम् इन्द्रियं विपानमँ् शुक्रम् अन्धस ऽ इन्द्रस्येन्द्रियम् इदं पयो ऽमृतं मधु॥ ~यजुर्वेद {१९/७६}

दयानंद अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ लिखते हैं कि--

"जैसे पुरुष का लिंग स्त्री की योनि में प्रवेश करता हुआ, वीर्य को छोडता है, और इससे अलग मूत्र को छोडता है, इससे जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक स्थान में विर्य रहता है"

समीक्षक-- वाह रे! वेदभाष्य के नाम पर कामशास्त्र लिखने वाले कामानंद, क्या कहने तेरे! तुझ को ऐसी-ऐसी अश्लील बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शर्म न आई, निपट अन्धा ही बन गया, यह जो तुने लिखा है कि (जैसे पुरुष का लिंग स्त्री की योनि में प्रवेश करता हुआ, वीर्य को छोडता है और इससे अलग मूत्र को छोडता है, इससे जाना जाता है कि शरीर में मूत्र के स्थान से पृथक स्थान में विर्य रहता है) भला यह अर्थ तुमने कौन से पदों से लिया है, भला इसमें कौन सा ईश्वरीय ज्ञान छूपा है? क्या तुम्हारे इस भाष्य से पूर्व मनुष्यों को इसका ज्ञान न था कि शरीर में मूत्र और विर्य पृथक पृथक स्थान में रहते है, शोक हे! तेरी बुद्धि पर, क्या तुमने ईश्वरीय ज्ञान को इतना तुच्छ और अश्लील जान रखा है? देखिये इस श्रुति का अर्थ ऐसा बिल्कुल नहीं जैसा तुमने अपनी अश्लील बुद्धि अनुसार किया है, सुनिये इसका सही अर्थ इस प्रकार है कि--

"जिस प्रकार गर्भ अपनी रक्षा के लिए स्वयं को जरायु में आवृत करता है, परन्तु जन्म के पश्चात उसे विदीर्ण कर उसका परित्याग कर देता है, जैसे एक ही मार्ग से भिन्न भिन्न पदार्थ (मुत्र एवं वीर्य) नि:सृत होते हैं लौकिक सत्य इसी सत्य का रूप है, यह अन्न स्वरूप सोम, विशिष्ट साधन, बल, अन्न, तेज, इन्द्रिय सामार्थ, दुग्धादि पेय और मधूर पदार्थ को हमारे निमित प्रदान करता है,

यह इसका अर्थ है और देखिये इस कामानंद ने इस वेद श्रुति के अर्थ का क्या अनर्थ किया है क्या दयानंद को ऐसा अश्लील अर्थ करते तनिक भी लज्जा न आई? उसने एक बार भी यह नही सोचा की जिन वेद ऋचाओं को ईश्वरीय वचन कहा जाता है, उन वेद ऋचाओं का ऐसा अश्लील अर्थ करने पर विद्वान लोग उन्हें क्या कहेंगे? जिन वेदों का स्थान संसार की सभी

पुस्तकों में प्रथम आता है, इस कामानंद ने उनका अश्लील भाष्य कर लोगों से घृणा करवायी है, जबकि यही दयानंद वेदों के अश्लील भाष्य करने का आरोप लगाते हुए सत्यार्थप्रकाश के द्वादश समुल्लास, में महीधरादि टीकाकारों को भांड, धूर्त और निशाचरवत् बोलते है, परन्तु उन्होंने ख़ुद वेद ऋचाओं का अर्थ अश्लील के साथ निरर्थक भी कर डाला,

पाठकगण! स्वंय विचार करकें बताए, वेदभाष्य के नाम पर अंतर्वासना लिखने वाले इस दयानंद को क्या कहना उचित रहेगा? और सुनिये आगे इसी अध्याय में मंत्र ८८ का अर्थ करते हुए लिखते है, कि--

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-४)

मुखमँ् सद्स्य शिर ऽ इत् सतेन जिह्वा पवित्रम् अश्विनासन्त् सरस्वती । चप्यं न पायुर् भिषग् अस्य वालो वस्तिर् न शेपो हरसा तरस्वी ॥
~यजुर्वेद {१९/८८}

दयानंद इसका अर्थ अपने यजुर्वेदभाष्य में यह लिखते हैं कि—“हे मनुष्यो! जैसे जिससे रस ग्रहण किया जाता है वह वाणी के समान स्त्री, इस पति के सुन्दर अवयवों से विभक्त शिर के साथ शिर करें तथा मुख के समीप पवित्र मुख करें इसी प्रकार गृहाश्रम के व्यवहार में व्याप्त स्त्री पुरूष दोनों ही वर्तें तथा जो इस रोग से रक्षक वैद्य और बालक के समान वास करने का हेतु पुरूष उपस्थेन्द्रिय (लिंग) को बल से करनेहारा होता है वह शान्ति करने के समान वर्तमान मे सन्तानोत्पत्ति का हेतु होवे उस सबको यथावत करे”

लेकिन बाद में स्वामी जी ने सोचा होगा कि उनके नियोगी चैलें उनके इस अर्थ को समझ न सकेंगे इसलिए अपने शिष्यों के वास्ते अर्थ को थोड़ा और आसान बनाने के लिए स्वामी जी भावार्थ में यह लिखते हैं कि--

स्त्री पुरूष गर्भाधान के समय मे परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आँख के साथ आँख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप और विकलांग सन्तान न होवे,

लेकिन स्वामी जी की अश्लील बुद्धि यही न रूकि, दयानंद अपने इसी कामशास्त्र का विस्तार से वर्णन करते हुए सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में अपने लाडले शिष्यों के लिए फरमाते है कि--

“जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहैं, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे, पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें”

समीक्षक-- वाह रे! इस कामशास्त्र के बनाने वाले, क्या कहना तेरा? दयानंद के इस भाष्य को पढ़कर यह कह पाना मुश्किल है कि दयानंद वेदभाष्य लिख रहा था या फिर कोई अंतर्वावसना, या फिर दयानंद ने ईश्वरीय ज्ञान को इतना तुच्छ और अश्लील समझ रखा है जैसा इस भांड के भाष्यों से प्रकट हो रहा है,

जहाँ तक गर्भाधान विधि का प्रश्न है, यह तो एक स्वाभाविक प्रक्रिया है, इसे तो न केवल अनपढ़, गवार मनुष्य जानता है, बल्कि पशु-पक्षी भी जानते है, पशु-पक्षियों को कौन से ‘शास्त्रों का ज्ञान होता हैं? उन्हें भला कौन यह सब सिखाता हैं? इस कारण दयानंद का किया यह अर्थ अशुद्ध है वेदों में ऐसी बातें कही नहीं है, यह शिक्षा करने को तो मनुष्य निर्मित साधारण पुस्तक ही काफी है इसलिए इस वेद श्रुति का यह अर्थ नहीं है, किन्तु इसका अर्थ यह है कि—“इन्द्रदेव के इस विराट शरीर में मुख और मस्तक सत्य से पवित्र है मुख में स्थित जिह्वा सत्य वाणी और सत्य स्वाद से पवित्र है, दोनों

अश्वनीकुमारों और देवी सरस्वती के द्वारा इन अंगों के संचालन से पवित्रता व्याप्त हुई, चप्य पायु इन्द्रिय हुई, और बाल शारीरिक दोषों को बाहर निकालने वाले भिषक् (उपचारकर्ता रूप) हुए, और वस्ति तथा विर्य से जननेंद्रिय हुई। इस श्रुति में तो शरीर के विभिन्न अंगों की सृष्टि किस-किस प्रकार हुई यह कथन किया है और इससे पूर्व और बाद के मंत्रों में भी यही कथन किया है”

यह इसका अर्थ है जबकि दयानंद का किया अर्थ इससे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता, ने जाने स्वामी कामानंद ने यह कपोल कल्पित अश्लील अर्थ किन पदों से निकाला है, इस वेद श्रुति में ऐसा कोई पद नहीं जिससे स्वामी कामानंद जी का लिखा कल्पित अर्थ सिद्ध होता हो, दयानंद ने इस प्रकार का अश्लील अर्थ लिखने से पूर्व एक बार भी यह न सोचा कि विद्वान लोग जब इसे देखेंगे तो उनके बारे में क्या सोचेंगे, भला ईश्वरीय ज्ञान भी इतना तुच्छ हो सकता है क्या? क्या यही वेद विद्या है क्या यही वेदों का सार है? दयानंद ने इन वेद ऋचाओं के अर्थ का जो अनर्थ किया है ऐसा तो कभी किसी ने भी नहीं किया होगा,

मुझे यह समझ में नहीं आता इन समाजीयों को दयानंद द्वारा किये यह अश्लील भाष्य नजर क्यों नहीं आते, क्यों उनकी दृष्टि दयानंद के इन भाष्यों पर नहीं पडती? यह धूर्त समाजी क्यों नहीं दयानंद के इन भाष्यों का विरोध करते हैं? यह तुम्हारा दौगलापन नही तो और क्या है? जब देखों जहाँ तहाँ अश्लीलता ढूंढते फिरते हो यहाँ तुम्हें प्रत्यक्ष है तो भी तुम्हारे नेत्रों से दिखाई नहीं पडता, इन नियोगी दल्लों का दौगालपन तो यही सिद्ध हो जाता है, देखिये प्रथम तो स्वामी कामानंद जी अपने लाडले शिष्यों को गर्भाधान का उपदेश इस प्रकार करते है कि-- (स्त्री पुरूष गर्भाधान के समय मे परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आँख के साथ आँख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें, इस प्रकार गर्भधारण करने से कुरूप और विकलांग सन्तान उत्पन्न नहीं होती,

और फिर आगे इसी के विरुद्ध यजुर्वेद अध्याय २८, मंत्र ३२ का भाष्य करते हुए लिखा है कि--

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-५)

होता यक्षत् सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्धनमँ् रूपाणि बिभ्रतं पृथक् पुष्टिम् इन्द्रं वयोधसम्।

द्विपदं छन्द ऽ इन्द्रियम् उक्षाणं गां न वयो दधद् वेत्व् आज्यस्य होतर् यज॥ ~यजुर्वेद {२८/३२}

इसका अर्थ स्वामी कामानंद जी ने अपने यजुर्वेदभाष्य में यह लिखा है कि--

"हे मनुष्यों! जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ता है, वैसे गृहस्थ लोग स्त्रीयों को गर्भवती कर प्रजा बढ़ावें"

{**नोट--** सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण में दयानंद ने लिखा है कि एक बैल से हजारों गैयां गर्भवती हो जाती है यहाँ वही अभिप्राय है या और कुछ?}

अब दयानंद के इन भाष्यों पर दृष्टि डालें तो दयानंद ने यहाँ दो प्रकार की गर्भाधान विधि का खुलासा किया,

(पहला)-- स्त्री पुरूष परस्पर मिलकर प्रेम से पूरित होकर मुख के साथ मुख, आँख के साथ आँख, मन के साथ मन, शरीर के साथ शरीर का अनुसंधान करके गर्भ का धारण करें,

(दूसरा)-- जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ता है, वैसे समाजी लोग अपनी स्त्रीयों को गर्भवती कर प्रजा बढ़ावें"

अब दयानंद के भाष्यानुसार ही दयानंदी बतायें कि भला इन दोनों विधियों में से गर्भाधान की कौन सी विधि सही है?

बुद्धिमान लोग स्वयं विचारें क्या धूर्त दयानंद की मूर्खता यही सिद्ध नही हो जाती, भला ईश्वरीय ज्ञान इतना तुच्छ और उट पटांग हो सकता है क्या?, बिल्कुल नहीं, दरअसल यह मिथ्या अर्थ स्वामी कामानंद जी के कपोल भंडार से निकलें है, यही तो दयानंद के भंग की तरंग है भंग के नशे में जो भी अंड संड मुहँ में आया बक दिया, जो मन में आया सो लिख दिया,

स्वामी कामानंद जी को तो अपने लिखें कि ही खबर नहीं क्या अंड संड लिखें जा रहे हैं, भला स्वामी जी के यह कपोल कल्पित अर्थ किन पदों से सिद्ध होते है, इस श्रुति में तो ऐसा कोई पद ही नहीं जिससे स्वामी जी का कथन सिद्ध होता हो, भला यह कौन सा ईश्वरीय ज्ञान है कि "जैसे बैल गौओं को गाभिन करके पशुओं को बढ़ता है, वैसे सब लोग अपनी स्त्रीयों को गर्भवती करें"?, यह हमारी समझ से तो बाहर है, इससे ही पता चलता है कि स्वामी जी को संस्कृत की कितनी समझ रही होगी, दयानंद ने वेदभाष्य के नाम पर सिर्फ अनुचित शिक्षा दिखा कर लोगों से घृणा करवाईं है, इसलिए विद्वानों को दयानंद का किया यह अर्थ अशुद्ध जानकर त्यागने योग्य है, इस वेद श्रुति का यह अर्थ किन्हीं पदों से सिद्ध नहीं होता, किन्तु इसका अर्थ यह है कि--

“द्विव्यहोता ने द्विपदा छंद, इन्द्रियशक्ति सिंचन करने वाली गौ (प्राणवर्धक किरणों) एंव आयुष्य को धारण करते हुए, उत्पादन शक्ति से सम्पन्न, विभिन्न प्राणियों को पोषण देने वाले, पुष्टि को धारण करने वाले त्वेष्टादेव एवं आयुष्य बढ़ाने वाले इन्द्रदेव का यजन किया, त्वष्टा एवं इन्द्रदेव हवि का पान करें, हे होता! तुम भी इसी प्रकार यज्ञ करों”

यह इसका अर्थ है और दयानंद ने इस वेद श्रुति के अर्थ का कैसा अनर्थ किया है वह आपके सामने है

दरअसल यह अर्थ स्वामी जी ने खास अपने शिष्यों के लिए तैयार किया है, दयानंद जी अपने भाष्यानुसार अपने लाडले शिष्यों को यह उपदेश करते हैं कि जैसे बैल गाय को गाभिन करता है उसी प्रकार तुम अपनी-अपनी

स्त्रीयों को करों, परन्तु दयानंदी अभी उस तरीके से काम नहीं लेते, दयानंदीयों को चाहिए कि गुरू आज्ञा का पालन करते हुए, आज से ही मनुष्य से पशु बनकर बैलों की भांति अपनी-अपनी स्त्रियों को गर्भवती कर प्रजा को बढावे और यदि तुम से न हो सके तो समाज से बाहर किसी अन्य पुरुष की सहायता से अपनी स्त्रीयों को गौओं की भांति गाभिन करवा प्रजा को बढ़ावे, यह नियोग नामक पशुधर्म स्वामी जी ने इसी के अर्थ चलाया है, इसलिए पशुओं की ही भांति अपनी स्त्रियों को जब कभी किसी परपुरूष के पास नियोग के लिए भेंजे तो उसे समझा दे कि जैसे बैल गौओं को गाभिन करता है वैसे ही वह तुम्हारी स्त्री को गाभिन कर प्रजा को बढ़ावे, तब जाकर कहीं गुरु आज्ञा का फल प्रकट होगा और दयानंद के लाडले शिष्य पुरे वैदिक कहला सकेंगे, अन्यथा नहीं, और सुनिये,

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-६)

सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिर् अभवद् अश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैर् अपुर् अश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान्॥ ~यजुर्वेद {२१/६०}

स्वामी जी अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि--

“हे मनुष्यों! प्राण और अपान के लिए दुःख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से, वाणी के लिए मेंढ़ा (मेंढक) से, और परम ऐश्वर्य के लिए बैल से भोग करें”

स्वामी कामानंद जी अपने इस भाष्यानुसार अपने लाडले शिष्यों के लिए फरमाते है, कि यदि कोई दयानंदी हमेशा दुखी रहता हो, हमेशा परेशानीयों से घिरा रहता हो, तो वो दुःख के विनाश के लिए छेरी (बकरी) आदि पशु के साथ भोग किया करें,

और यदि किसी दयानंदी की वाणी खराब हो गई हो जैसे तुतलापन हो, गला बैठ गया हो या फिर जन्म से गूंगा आदि हो तो ऐसे समाजी, वाणी के लिए मेंढ़ा (मेंढक) से भोग किया करें,

और परम ऐश्वर्य की कामना रखने वाले सभी दयानंदी परम ऐश्वर्य के लिए बैल से भोग किया करें,

वाह! दयालु हो तो ऐसा, देखिये स्वामी जी ने किस युक्ति से अपने लाडले शिष्यों का धन बचाया है, भारतवर्ष में अब तक लोग यह शिकायत किया करते थे कि यहाँ विवाहों में धन अधिक खर्च होता है, लेकिन आज तक कोई इसका वन्दोवस्त न कर सका, परन्तु स्वामी जी ने युक्ति के साथ वह वन्दोवस्त भी कर दिया, अब दयानंदीयों को न तो खर्च करने की जरूरत और न ही विवाह करने की जरूरत, दोनों आवश्यकताएँ मिट गई, क्योकि दयानंदी अब अपने वेदभाष्यों के विरुद्ध स्त्री के साथ भोग ही नहीं करेंगे, जब इच्छा होगी किसी बकरी, मेंढे या फिर बैल के साथ भोग कर लिया करेंगे,

इसके अलावा एक और अन्याय हो गया वह यह कि हमारे दयानंदी भाई तो बैल से भोग कर परम ऐश्वर्य वाले हो जायेंगे, और उनसे भिन्न मत वाले हमेशा गरीब ही रहेंगे, क्योकि इनके हाथ तो किस्मत की चमचमाती छडी लग गई जहाँ जरा सी भी सम्पत्ति घटी फिर बैल के साथ भोग कर लेंगे और इनसे भिन्न मत वाले इस निन्दित घृणा मुक्त कर्म कर न सकेंगे, और हमेशा गरीब ही रहेंगे, इसके विपरीत समाजी ऐश्वर्यवान होते जायेंगे फिर चाहे कोई रोजगार करें या न करें,

मुझे इस बात का बड़ा संदेह हो गया कि हमारे दयानंदी भाई उचित अनुचित जो कुछ भी दयानंद लिख गये यह सबको सत्य ही मानते हैं, अब आप सोचिये कि इस प्रकार की उट पटांग बातें लिखने वाले दयानंद की बुद्धि कैसी रही होगी? और सुनिये,

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-७)

प्राणम्मे पाह्मपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म ऽ उर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय।

अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात् पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥
~यजुर्वेद {१४/८}

स्वामी जी अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि--

स्त्री पति से और पति अपनी स्त्री से कहें कि-- “हे स्त्री! तू मेरे नाभि के नीचे गुहेन्द्रिय मार्ग से निकलने वाली अपान वायु की रक्षा कर”

समीक्षक-- धन्य हे! स्वामी निर्बोधानंद जी तुम्हारी बुद्धि, इस वेदभाष्य को मानने वाले दयानंदीयों से मेरा यह प्रश्न है कि क्या इतना कहते कुछ लज्जा न आवेंगी?

और वह स्त्री गुहेन्द्रिय मार्ग से निकलने वाली वायु की रक्षा कैसे करेगी?

साथ में यह प्रश्न भी है कि यह रक्षा रोज रोज होती है या फिर आर्य समाज के किसी वार्षिक उत्सव पर?

यदि यह रक्षा रोज होती है तो दयानंदी लोग अपने गृहस्थादि कार्य किस प्रकार करते हैं क्योंकि यदि गृहस्थ कार्य में व्यस्त होने के दौरान ही गुहेन्द्रिय मार्ग से वायु निकल जाये तो हमारे दयानंदी उसकी रक्षा करने से चूक जायेंगे, तो लो अब सब काम धाम छोड़ गुहेन्द्रिय मार्ग से निकलने वाली वायु के निकलने की प्रतीक्षा करों, समाजी स्त्री अपने पति की और समाजी पुरुष अपनी स्त्री के गुहेन्द्रिय मार्ग की तरफ टकटकी लगाकर बैठे रहे, जाने कब निकल जायें

धन्य है ऐसे भाष्यकार और धन्य है ऐसे भाष्यों को मानने वालें अक्ल से पैदल समाजी, और सुनिये

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-८)

वाचं ते शुन्धामि। प्राणं ते शुन्धामि। चक्षुस् ते शुन्धामि। श्रोत्रं ते शुन्धामि। नाभिं ते शुन्धामि। मेढ्रं ते शुन्धामि। पायुं ते शुन्धामि। चरित्राम्ँस् ते शुन्धामि॥ ~यजुर्वेद {६/१४}

स्वामी जी अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि--

“हे शिष्य! मै तेरी वाणी, नेत्र, नाभि, जिससे “**मूत्रोत्सर्गादि”** किये जाते हैं उस “**लिंग”** को, तेरे “**गुदेन्द्रिय”** को शुद्ध करता हूँ”

स्वामी कामनंद जी इस वेदभाष्य में अपने लाडले शिष्यों को उपदेश करते हुए लिखते है कि गुरू को चाहिए कि अपने शिष्य के लिंग और गुदा को शुद्ध करें, धन्य हे! ऐसा भाष्यकार, भाष्य हो तो ऐसे, इनके भाष्यों में तो महापाप भी धर्म है,

मै दयानंदीयों से पूछना चाहूँगा क्या दुनिया की सभ्य जातियाँ इस भाष्य को पढ़कर छी छी नहीं करेगी, दयानंद को ऐसा अश्लील भाष्य करते हुए लज्जा न आई, ये सब लिखने से पूर्व दयानंद ने यह नही सोचा कि विद्वान लोगों की दृष्टि जब उनके इस अर्थ पर पडेगी तो वे उनके बारें में क्या सोचेंगे,

मैं दयानंदीयों से ही पूछना चाहता हूँ कि यह सतशिक्षक सम्पूर्ण विद्याओं का भंडार वेद हैं या फिर किसी व्यभिचारी शिक्षक द्वारा लिखा कामशास्त्र,

हमारे दयानंदी भाई कहते हैं कि हमारा मत वेद हैं और हमें केवल दयानंद कृत वेदभाष्य ही मान्य हैं, देखिये ये है इनके वेदभाष्य और ये है इनकी सभ्यता, दयानंद का वेदभाष्य पढ़ने बैठों समझ में नहीं आता कि वेद पढ़ रहे हैं या फिर किसी व्यभिचारी पुरुष द्वारा लिखित कामशास्त्र,

जिस भारतवर्ष की पावन भूमि पर आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, बोधयन, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, और कणाद आदि जैसे महाविद्वान उत्पन्न

हुए, उसी भारत भूमि पर दयानंद जैसा धूर्त भी उत्पन्न हुआ, जिन वेदों का स्थान विश्व की प्रथम पुस्तकों में आता है जिन्हें सब सतविद्याओं का भंडार कहा गया है उसी वेद के नाम पर दयानंद ने अनुचित शिक्षा दिखलाकर लोगों को घृणा करवाईं है लेकिन यह याद रहे कि इन मंत्रों के यह अर्थ हर्गिज नहीं यह स्वामी जी की गढ़न्त है यह दयानंद वेदभाष्य है जो उन्होंने अपनी अश्लील बुद्धि अनुसार करें है, इस कारण यह मानने योग्य नहीं और जिन्होंने यह अर्थ किये हैं, वह महर्षि क्या? महामूर्ख कहलाने योग्य भी नहीं, और ऐसे मूर्खों को महर्षि कहना, महर्षि शब्द की इज्जत उतारना है,

नस्लभेदी जातिवादी “दयानंद”

॥पैदाइशी चुतिया प्रकरण॥

हमारे दयानंदी गपोड़िये अक्सर एक बात कहते नहीं थकते कि दयानंद ने समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों पर आक्रमण करते हुए, जातिवाद का विरोध किया, तथा कर्म के आधार पर वेदानुकूल वर्ण-निर्धारण की बात कही, वे दलितोद्धार के पक्षधर थे, इसी प्रकार के और न जाने क्या क्या गपोड़े मारते है, सो आज इस लेख के माध्यम से मैं इन सब बातों का खंडन कर, दयानंद की जिहादी विचारधारा से आप लोगों को अवगत कराना चाहता हूँ, जिससे यह सिद्ध हो जायेगा कि दयानंद दलितोद्धार के पक्षधर नहीं बल्कि दलितोद्धार के घोर विरोधी थे, समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों नस्लभेद जातिवाद आदि को बढ़ावा देने वाले स्वामी दयानंद ही थे, जो स्वयं दयानंद के ही द्वारा लिखे वेदभाष्य और लेखों से सिद्ध होता है देखिये--

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-१)

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालम् अन्तरिक्षाय वमँ् शनर्तिनं दिवे खलतिमँ् सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासम् अह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षमँ् रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम्॥ ~यजुर्वेद { ३०/२१}

दयानंद अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि---

“हे परमेश्वर वा राजन् !आप, (हर्यक्षम्)- बन्दर की सी छोटी आँखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को,,,,,,, (पिङ्गलम्)- पीली आँखोवाले को उत्पन्न कीजिये,,,,,, (चाण्डालम्)- भंगी को, (खलतिम्)- गंजे को,,,,,, (कृष्णम्)- काले रंगवाले, (पिङ्गाक्षम्))- पीले नेत्रों से युक्त पुरूष को दूर कीजिये”

स्वामी जी अपने इस अर्थ की पुष्टि के लिए भावार्थ में स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं कि—“भंगी के शरीर से आया वायु दुर्गंधयुक्त होने से सेवन योग्य नहीं इस कारण उसे दूर भगावें”

समीक्षक-- वाह रे! इस कपोल कल्पित वेदभाष्य के लिखने वाले, वेदों के नाम से अनैतिक शिक्षा कर लोगों से घृणा कराने वाले भडवानंद क्या कहने तेरे! तुझको ऐसा मिथ्या अर्थ करते तनिक भी लज्जा वा शर्म न आयी, यह भी न सोचा कि जब विद्वान जन तुम्हारा यह अर्थ पढ़ेंगे तो तुम्हारे बारे में क्या सोचेंगे, क्या यही ईश्वरीय वचन है? इस वेद श्रुति में यही कथन किया है? जब संस्कृत तुम्हारी बुद्धि से परे है, तो भला क्यों वेद मंत्रों के अर्थ का अनर्थ करते हो, तुम्हारे द्वारा किया यह कल्पित अर्थ किन्हीं पदों से सिद्ध नहीं होता, देखों इसका सही अर्थ यह है कि--

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालम् अन्तरिक्षाय वमँ् शनर्तिनं दिवे खलतिमँ् सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासम् अह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षमँ् रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम्॥

(अग्नये)= अग्नि के समीप कार्य करने के लिए, (पीवानम्)= बलवान पुरुषों को, (पृथिव्यै)= पृथ्वी के लिए, (पीठसर्पिणम्)= आसन पर बैठकर कार्य करने वाले पुरुषों को, (वायवे)= तेज वायु वाले स्थान के लिए, (चाण्डालम्)= प्रचंड शक्तिवाले पुरुष को, (अन्तरिक्षाय)= आकाश स्थित अर्थात ऊंचाई वाले कार्य के लिए, (वंशनर्त्तिनम्)= बाँस पर कलादि दिखाने वालों को, (दिवे)= द्युलोक के लिए, (खलतिम्)= आकाशस्थ गोलिय पिंड़ों की गति को जानने वाले खगोलविद पुरुषों को, (सूर्याय)= सूर्य के लिए, (हर्यक्षम्)= हरित वर्ण वाले, (नक्षत्रेभ्यः)= नक्षत्रों के लिए, (किर्मिरम्)= धवल वर्ण के जानने वाले विदजनों को, (चन्द्रमसे)= चन्द्र सम्बन्धी प्रभावों के निवारण हेतु, (किलासम्)= किलासविद जनों को, (अह्ने)= दिन के कार्यों के लिए, (शुक्लम्)= श्वेत रंग के, (पिङ्गाक्षम्)= पीले नेत्रों वाले, तथा (रात्र्यै)= रात्रि के लिए, (कृष्णम्)= काले रंग वाले, (पिङ्गाक्षम्)= पीले नेत्रों से युक्त पुरूषों को नियुक्त करना चाहिए।

यह इसका अर्थ है, इस श्रुति में सब प्रकार के प्राणीयों, जो जिसके योग्य है उससे वह कार्य लें ऐसा इस श्रुति में कथन किया है, इससे इसमें किसी का अनादर नहीं देखा जाता और जबकि इसी श्रुति का स्वामी निर्बोधानंद जी ने कैसे अर्थ का अनर्थ किया है वह आप सबके सामने है, दयानंद का यह भाष्य पढ़कर इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि दयानंद पैदाइशी हुतिया है, दयानंद का यह भाष्य इस बात की पुष्टि करता है, अब यहाँ विद्वान लोगों को स्वयं दयानंद के इस अर्थ पर एक दृष्टि ड़ालकर यह देखना चाहिए कि प्रथम तो दयानंद ने अपने इस अर्थ में यह लिखते हैं कि "हे परमेश्वर वा राजन्! आप (पिङ्गालम्) पीली आँखवाले को उत्पन्न कीजिये" और फिर स्वयं ही उस पदार्थ के अन्त में ऊपर लिखी बात के विरुद्ध यह लिखते हैं कि "हे परमेश्वर आप, (पिङ्गाक्षम्) पीले नेत्रों से युक्त पुरूष को दूर कीजिये"

अब यहाँ बुद्धिमान जन स्वयं विचारें कि एक ही मंत्र में दो परस्पर विरुद्ध बातों का लिखना, क्या दयानंद की बुद्धि पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाता? क्या

ईश्वर इस प्रकार की परस्पर विरुद्ध बातों से भरा उपदेश मनुष्यों को कर सकता है? कदापि नहीं, इस मुर्खानंद ने तो अपने इस भाष्य से ईश्वर तक को कंफ्यूज कर दिया होगा, फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या करनी, अब यह बात तो हमारे दयानंदी भाई ही बता सकेंगे, की दयानंद के इस भाष्यानुसार ईश्वर को क्या करना चाहिये, वह पीले नेत्रों वाले मनुष्यों को उत्पन्न करें या ना करें! और सुनिये,

अपने इसी भाष्य में दयानंद जी आगे लिखते हैं कि “हे परमेश्वर! आप, (हर्यक्षम्)- बन्दर की सी छोटी आँखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को, (चाण्डालम्)- भंगी को, (खलतिम्)- गंजे को, (कृष्णम्)- काले रंगवाले, (पिङ्गाक्षम्))- पीले नेत्रों से युक्त पुरूष को दूर कीजिये”

अब यहाँ विद्वान लोग विचारें कि भला ईश्वर भंगी, गंजे, काले रंग वाले, पीले नेत्रों वाले और छोटी आँखों वाले, मनुष्यों को दूर क्यों करें, इनसे संसार की कौन सी ऐसी हानि हो गई जो ईश्वर इनको दूर करें, इन सबने स्वामी जी का ऐसा क्या बिगाड़ दिया जो स्वामी जी इनकी भडास अपने वेदभाष्यों में निकाल रहे हैं, भला ईश्वर इन्हें दूर क्यों करें कोई कारण तो लिखा होता, क्या यह सब मनुष्य मनुष्य की संतान नहीं? या फिर इनकी सृष्टि ईश्वर द्वारा नहीं हुई, भला ईश्वर ऐसा क्यों करने लगे, जिन्हें स्वयं ईश्वर ने ही उत्पन्न किया वह उन्हें दूर क्यों करेंगे?

हाँ दयानंद जरूर ऐसा सोचते होंगे, शायद उन्हें ऐसे पुरुष अच्छे न लगते हो, जिसे उन्होंने अपने वेदभाष्य के माध्यम से लिखकर उनके प्रति मन में भरी घृणा को जगजाहिर किया है, और भावार्थ में तो स्पष्ट यह तक लिख दिया कि “भंगी के शरीर से आया वायु दुर्गंधयुक्त होने से सेवन के योग्य नहीं इसलिए उन्हें दूर भगावें” अब दयानंदी ही बतायें कि यदि दयानंद के भाष्यानुसार भंगी को सिर्फ इस कारण दूर कर दें क्योकि उसके शरीर से दुर्गंधयुक्त वायु आती है, तो क्या उनके बदले यह कार्य करने दयानंद का बाप आयेगा, इससे सिद्ध होता है कि समाज में व्याप्त कुरीतियों नस्लभेद,

जातिवाद आदि को बढ़ावा देने वाले दयानंद ही है और वही अनैतिक शिक्षा दयानंद ने अपने वेदभाष्यों से अपने लाडले शिष्यों के लिए लिखीं हैं, और सुनिये

इस भाष्य में ऊपर दयानंद ने यह लिखा है कि “हे परमेश्वर! आप, **(हर्यक्षम्)** बन्दर की सी छोटी आँखों वाले शीतप्राय देशी मनुष्यों को दूर भगावें”

यह स्वामी जी ने क्या लिख दिया, ऐसी शारीरिक रचना तो विशेषकर तिब्बत आदि देश के मनुष्यों की होती है और स्वामी जी सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में यह लिखा है कि उनकी और उनके पूर्वजों की सृष्टि तिब्बत में हुई थी, और इस में बसने से पूर्व स्वामी जी और उनके नियोगी चैले तिब्बती थे, इससे यह सिद्ध हुआ कि यह बन्दर की सी छोटी आँखों वाले मनुष्य दयानंद तथा आर्य समाजीयों के पूर्वज हुए, और अपने ही पूर्वजों के लिए दयानंद यह लिखते हैं कि परमेश्वर उन्हें दूर भगावें, धन्य हे! दयानंद की बुद्धि जिसे अपने मत की अपने लिखें कि ही सुध नहीं, कि क्या उल्ट सूल्ट लिख दिया स्वयं को खबर नहीं, दरअसल यह दयानंद के भंग की तरंग है भंग के नशे में मूहँ में जो अंड संड आया बक दिया जो मन में आया सो लिख दिया, भला ऐसे भंगेडी के बातों का क्या प्रमाण? और सुनिये--

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-२)

मूर्धा वयः प्रजापतिश् छन्दः। क्षत्रं वयो मयंदं छन्दः। विष्टम्भो वयो ऽधिपतिश् छन्दः। विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दः। वस्तो वयो विवलं छन्दः। वृष्णिर् वयो विशालं छन्दः। पुरुषो वयस् तन्द्रं छन्दः। व्याघ्रो वयो ऽनाधृष्टं छन्दः। सिँहो वयश् छदिश् छन्दः। पष्ठवाड् वयो बृहती

छन्दः। ऽ उक्षा वयः ककुप् छन्दः। ऽ ऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः॥
~यजुर्वेद {१४/९}

दयानंद अपने यजुर्वेद में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि--

“हे स्त्री वा पुरुष! (व्याघ्रः) जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूँघता है, उस जन्तु के तुल्य राजा तू,,,,,, (षष्ठवाट्)- पीठ से बोझ उठाने वाले ऊँट आदि के सदृश वैश्य तू,,,,,, (उक्षा)- सींचनेहारे बैल के तुल्य शूद्र तू, (ऋषभः)- शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य तू, (छन्दः)- स्वतंत्रता की प्रेरणा कर”

समीक्षक-- वाह रे! इस वेदभाष्य के लिखने वाले गवर्गण्ड दयानंद क्या कहने तेरे, ऊँट के सदृश वैश्य, बैल के तुल्य शूद्र और शीघ्रगन्ता पपशु के तुल्य भृत्य (सेवक), धन्य है ऐसा भाष्यकार और धन्य है ऐसे भाष्यों को मानने वाले मुझे समझ नहीं आता कि ये अर्थ दयानंद ने किस निघंटु से लिए है जहाँ “(षष्ठवाट्)- पीठ से बोझ उठाने वाले ऊँट आदि के सदृश वैश्य, (उक्षा)- सींचनेहारे बैल के तुल्य शूद्र, और (ऋषभः)- शीघ्रगन्ता पशु के तुल्य भृत्य” आदि पदों के यह अर्थ लिखें हैं, इस श्रुति का यह अर्थ तो किन्हीं पदों से सिद्ध नहीं होता, किन्तु इसका सही अर्थ यह है कि--

“गायत्री रूप से प्रजापति ने इच्छाशक्ति द्वारा मूर्धन्य ब्राह्मण की उत्पत्ति की, अनिरूत्त छन्द से संरक्षण-युक्त क्षत्रिय का सृजन किया, जगत् को पोषण देने वाले परमेश्वर ने छन्द रूप हो वैश्यों की रचना की, परमेष्ठी विश्वकर्मा ने शक्ति द्वारा छन्द रूप शुद्र की उत्पत्ति की, एकपाद नामक छन्द के प्रभाव से परमेश्वर ने मेष आदि जीवों को उत्पन्न किया, पंक्ति छन्द के प्रभाव से मनुष्य को उत्पन्न किया, विराट छन्द के प्रभाव से प्रजापति ने व्याघ्र आदि को प्रकट किया, अतिजगती छन्द के प्रभाव से सिंह को प्रकट किया, बृहती छन्द के प्रभाव से भारवाहक पशुओं को उत्पन्न किया, ककुप् छन्द के प्रभाव से प्रजापति ने उक्षा जाति को उत्पन्न किया, सतोबृहती छन्द के प्रभाव से भालू आदि पशुओं को उत्पन्न किया”

यह इसका अर्थ है और दयानंद ने इस श्रुति के अर्थ का क्या अनर्थ किया है वो आपके सामने है और सुनिये सिर्फ यही नहीं दयानंद ने राजा तक को पशु तुल्य बताते हुए राजा को किसी कुत्ते की भांति समझ लिया है स्वामी मुर्खानंद जी लिखते हैं कि (व्याघ्र:)- जो विविध प्रकार के पदार्थों को अच्छे प्रकार सूँघता है उस जन्तु के तुल्य राजा तू, (सिंह:)- पशु आदि को मारनेहारे सिंह के समान पराक्रमी राजा तू,

अब कहिये इससे बड़ी चुतियापंति और क्या हो सकती है? जिस राजा को प्रजा पिता तुल्य, ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में देखती है, उसे दयानंद किसी कुत्ते की भांति सुघने वाला पशु बताते हैं,

और इसी प्रकार दयानंद ने अध्याय १६ मंत्र ५२ में भी लिखा हैं कि—"हे (विकिरिन्द्र)- विशेषकर सूवर के समान सोने वाले, (भगव:)- ऐश्वर्ययुक्त राजन"

बुद्धिमान विचारें क्या राजा को कुत्ते सूवर आदि की उपमा देना ठीक है स्वयं सोचकर देखिए जिस ईश्वर को दयानंद ने स्वयं अपने वेदभाष्यों में अनेकों स्थान पर "राजा" ऐसा कथन किया है, उसी को यहाँ कुत्ते की भांति सुघने वाला, सूवर के समान सोने वाला लिखा है इससे समझा जा सकता है कि इस वेदभाष्य के लिखने वाले दयानंद की बुद्धि कैसी रही होगी?

लोगों का तो पता नहीं पर दयानंद का ये भाष्य पढ़कर दयानंद की प्रशंसा में मेरे मुख से दो वाक्य जरूर निकलते हैं कि-- भंग के नशे में विशेषकर सूवर के समान सोने वाले भंगेडानंद, भाष्य हो तो ऐसा और धूर्त हो तो तेरे जैसा

शुद्र, वैश्य, भृत्य(सेवक), राजा आदि को पशु तुल्य बताने वाले दयानंद के लिए ये उपमा बिल्कुल सही है

क्योकि मेरे हिसाब से स्वामी दयानंद ने अपने अदभुद ज्ञान से विश्व भर में फैली गंदगी को उसी प्रकार दूर कर किया जिस प्रकार एक सूवर गूँ खाकर समाज में फैली गंदगी को दूर करता है

और मुझे नहीं लगता कि दयानंदीयों को इससे कोई आपत्ति होनी चाहिए,

यहाँ तक कि दयानंद राजा को निर्दोष पशुओं को मारने वाले हिंसक सिंह के समान बोलते है,

भला निर्दोष पशुओं की हत्या करने वाला राजा पराक्रमी कैसे हुआ?

यहाँ तो दयानंद ने पशुहिंसा को भी धर्म का अंग बता दिया, वाह रे भंगेडानंद तेरी बुद्धि! तुम्हारे शब्दों की कैसी विचित्र महिमा है जिस ईश्वर को अपने वेदभाष्यों में स्वयं राजा तुल्य लिखा है और यहां उसी राजा को कुत्ते आदि जीवों की भांति सुघने वाला और सूवर के समान सोने वाला कथन किया है, इससे विदित होता है कि इस दिन तुमने प्रथम तो लौटा भर कर पिया होगा फिर भाष्य करने बैठे होंगे।

स्वामी दयानंद एकादश नियोग की देन

सनातन धर्म से भिन्न दयानंद द्वारा चलाए गये वेद विरुद्ध मतों में से एक मत है पशुधर्म नाम से विख्यात “नियोग प्रथा” दयानंद ने अपने तथाकथित ग्रंथ “सत्यार्थ प्रकाश” में लगभग पूरा एक समुल्लास इस पशुधर्म नियोग पर ही लिखा है, और वेदादि शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ कर अपने अनुयायियों के साथ साथ समस्त भारतवर्ष को इस महाअधर्म व्यभिचार नियोग नामक अंधकूप में धकेलने का असफल प्रयास किया है, वेद मनुस्मृति आदि के अर्थ का अनर्थ कर नियोग सिद्ध किया है जिससे धर्म के न जानने वाले लोगों में भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है, सो इस लेख के माध्यम से मैं दयानंद के उन मिथ्या भाष्यों की धज्जियां उडाते हुए, प्रमाण के साथ यह सिद्ध करकें दिखाऊंगा की दयानंद द्वारा चलाया यह पशुधर्म नियोग वेद विरुद्ध होने से मनुष्यों के लिए निषिद्ध है अर्थात मनुष्यों को यह पशुधर्म त्यागने योग्य है, सो अब एक एक करकें दयानंद के उन सभी वेद विरुद्ध भाष्यों का खंडन करते हैं जिनके अर्थ का अनर्थ कर दयानंद ने नियोग सिद्ध किया है सुनिये--

(दयानंद कृत ऋग्वेदभाष्य, भाष्य-१)

सोमः प्रथमो विविदे गन्ध्वो विविद उत्तरः।

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तु रीयस्ते मनुष्यजाः॥ ~ऋ० {मं० १०, सू० ८५, मं० ४०}

दयानंद अपने ऋग्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि—

“हे स्त्री! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहला विवाहित (पतिः) पति तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है उस का नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से सोम जो दूसरा नियोग होने से (विविदे) प्राप्त होता वह, (गन्धर्वः) एक स्त्री से संभोग करने से गन्धर्व, जो (तृतीय उत्तरः) दो के पश्चात् तीसरा पति होता है वह (अग्निः)- अत्युष्णतायुक्त होने से अग्निसंज्ञक और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य नाम से कहाते हैं | जैसा (इमां त्वमिन्द्र) इस मन्त्रा में ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है, वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है”

समीक्षक-- स्वामी जी ने तो ऐसी हठ ठानी है कि अर्थों का अनर्थ कर दिया है इस मंत्र का यह अर्थ नहीं जैसा कि स्वामी नियोगानंद जी ने किया है देखिए इसका सही अर्थ इस प्रकार है कि--

सबसे (प्रथमः)= पहले, (सोमः)= सोम, (विवदे)= इस कन्या को प्राप्त हो, {अर्थात कन्या के माता पिता सब से पहले तो ये देखें कि उसका पति 'सोम' है या नहीं, पति का स्वभाव सौम्य है या नहीं, तत्पश्चात इस कन्या को (गन्धर्वः)= 'गां वेदवायं धारयति' ज्ञान की वाणियों को धारण करने वाला हो, यह (उत्तरः)= अधिक उत्कृष्ट होता है, कि{ सौम्यता यदि पति का पहला गुण है तो ज्ञान की वाणियों को धारण करना उसका दुसरा गुण है, (तृतीयः)= तीसरा, (अग्निः)= प्रगतिशील मनोवृत्ति वाला हो {अर्थात तेरा पति वह है जो आगे बढ़ने की वृत्तिवाला हो }, (तुरीयः)=चौथा, (मनुष्यजाः)= वह मनुष्य की संतान हो, {अर्थात जिसमें मानवता हो, जिसका स्वभाव दयालुता वाला हो क्रूरता वाला नहीं}, (ते)= तेरा, (पतिः)= पति है

भाव यह है कि—“कन्या व उसके माता पिता उसके पति में निम्न विशेषताएं अवश्य देखें कि पहला तो वह सौम्य हो सौम्यता पति का पहला गुण है, दुसरा गन्धर्व ज्ञान की वाणियों को धारण करने वाला हो अर्थात ज्ञानी हो, तीसरा प्रगतिशील मनोवृत्ति वाला हो, चौथा वह मनुष्यजा मनुष्य

की संतान हो अर्थात जिसमें मानवता हो जिसका स्वभाव दयालुता वाला हो क्रूरता वाला नहीं”

इस मंत्र में कहीं भी नियोग तो क्या नियोग कि गंध तक नहीं है परन्तु स्वामी नियोगानंद जी ने इसके अर्थ का ऐसा अनर्थ किया कि पूछें मत, अब बुद्धिमान लोग एक बार स्वयं स्वामी जी द्वारा किये भाष्य पर दृष्टि डालकर बताए कि दयानंदी लोग क्या उसी स्त्री से विवाह करते हैं जो प्रथम एक से विवाह और दो से नियोग कर चुकी है?

धन्य हे! यही तो धर्म और स्वामी जी की शर्म है और पूर्व के विरुद्ध यहाँ ही दूसरा विवाह निकाल दिया,

अब विचारने की बात है यदि स्वामी नियोगानंद जी का किया अर्थ माने तो, न जाने वह पहला विवाहित सोम संज्ञावाला पति अपने जीते जी अपनी पत्नी गन्धर्व संज्ञावाले नियोगी पति को क्यों देगा? और वह गन्धर्व नियोगी अपने जीते हुए अग्नि संज्ञावाले नियोगी पति को क्यों देगा? और चौथा ही पति मनुष्य क्यों कहाता है? क्या वे पिछले तीन किसी जानवर की सन्तान हैं?

और तीसरे को ही अग्नि कि संज्ञा क्यों? शायद वो हमेशा यह सोच कर जलता रहता हो कि पहले के समान सुकुमारतादि गुण और में क्यों नहीं इत्यादि इत्यादि। इस कारण दयानंद के किये सब अर्थ भ्रष्ट है

इसके अतिरिक्त और भी मंत्र जैसे--

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।

दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि॥

~ऋ० {मं० १०, सू० ८५, मं० ४५}

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ ~ऋ० {मं० १०, सू० १८, मं० ८}

इत्यादि मंत्रों के अर्थ का अनर्थ करकें नियोग बनाया है अर्थात नियोग झूठ से सिद्ध किया है, जबकि इन सभी मंत्रों में कहीं भी नियोग की गन्ध तक नहीं है।

सिर्फ अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दयानंद ने वेद मंत्रों के साथ कैसा अनर्थ किया वह आप सबके सामने ही है, और सुनिये

(दयानंद कृत ऋग्वेदभाष्य, भाष्य-२)

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।

दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥

~ऋ० {मं० १०, सू० ८५, मं० ४५}

दयानंद अपने ऋग्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि—

“हे (मीढ्व इन्द्र) वीर्य सेचन में समर्थ ऐश्वर्ययुत्तफ पुरुष !तू इस विवाहित स्त्री वा विध्वा स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्ययुक्त कर, इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान !हे स्त्री !तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पति को समझ”

समीक्षक-- धन्य है! स्वामी जी कलयुग तो धिरे-धिरे आता था अपने उसे शीघ्र प्रवर्त करने का ढंग निकाला, जैसा कि आपने अपने सत्यार्थ प्रकाश में इस श्रुति के अर्थ यह लिखा कि "एक स्त्री चार नियुक्त पुरुषों के अर्थ और दो अपने लिए पुत्र उत्पन्न कर लें" यह तो जैसे घर की खेती समझ ली

की जब गये पुत्र हो गया, कन्या का कोई नाम ही नहीं बस पुत्र ही पुत्र होंगे, यदि यह ईश्वर की आज्ञा है तो ईश्वर सत्यसंकल्प है सबके पुत्र ही उत्पन्न होने चाहिए कन्या एक भी नहीं, बस सारा नियोग यही समाप्त हो जाता है, परन्तु यह देखने में नहीं आता तुम तो अपने मिथ्या भाष्यों से ईश्वर को भी झूठा बनाते हो, इसलिए इस श्रुति का अर्थ यह नहीं बनता जैसा तुमने किया है बहुत से लोग निसंतान भी होते हैं यह व्यभिचार प्रचार मूर्ख नियोग समाजीयों के साथ साथ समस्त भारतवासियों को घोर अंधकार में डालने वाला है, इसमें वेद मंत्रों को क्यों सानते हो? यदि इतनी ही ज्यादा खुजाई मच रही थी तो कोई अपनी ही मिथ्या संस्कृत बना लेते, तुम्हारे चैले तो उसे भी पत्थर की लकीर मान लेते, देखिए वेदों में ऐसी बातें कभी नहीं होती, यह मंत्र विवाहप्रकरण का है जो आशीर्वाद के अर्थ में है और इसका अर्थ इस प्रकार है कि--

हे (इन्द्र)= इन्द्र परमएश्वर्य युक्त देव (मीढः) सर्वसुखकारी पदार्थों की वृष्टि करने वाले, (त्वम्)= आप, (इमाम्)= इस स्त्री को भी, (सुपुत्राम् सुभगम्)= पुत्रवती धनवती (कृणु)= करें और, (दश)= दश इसमें, (पुत्रान्)= पुत्रों को धारण करो, भाव यह है कि दश पुत्र पैदा करने के अदृष्ट इस स्त्री में स्थापित करों, और (एकादशं)= ग्यारहवां, (पतिम्)- पति को, (कृधि)= करों अर्थात जीवित पति और जीवित पुत्र इसको करों, यह मंत्र आशिर्वाद के अर्थ है, जो स्वामी नियोगानंद जी ने कुछ का कुछ लिख दिया है, और स्वामी जी ने यह न सोचा कि यदि एकादश पति पर्यन्त नियोग करने की ईश्वर की आज्ञा है, तो ईश्वर तो सत्यसंकल्प है तब तो सब स्त्रीयों के दश-दश पुत्र से कम नहीं होने चाहिए यदि दश से कम होंगे तो ईश्वर का संकल्प निष्फल होगा, इससे स्वामी जी का किया अर्थ अशुद्ध है।

अब विचारने की बात यह है कि इसमें नियोग प्रचारक कौन सा शब्द है? जिस मंत्र मे नियोग कि गंध तक नही है स्वामी नियोगानंद जी ने उसे भी नियोग से जोड दिया, दयानंद जी ने तो यह समझ लिया कि हमारे अनुयायी हमारे वाक्यों को पत्थर की लकीर मानते हैं और वेदभाष्य भी

हमारा किया ही मानते हैं इसलिए जो चाहे सो अंड संड बकवास किये जायें, इस हिसाब से तो तुम्हारे मत में किसी के दश से कम पुत्र नहीं होने चाहिए और जिनके दश से कम है वह तुम्हारे वाक्यानुसार कुछ चिंता करें, और दश संतान में समय कितना लगेगा यह न लिखा तुमने। और सुनिये,

(दयानंद कृत ऋग्वेदभाष्य, भाष्य-३)

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।

हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥ ~ऋ० {मं० १०, सू० १८, मं० ८}

अपने ऋग्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि—

“हे (नारि) विध्वे तू (एतं गतासुम) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभि जीवलोकम) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीष्र्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्यदिधिषोः) तुम विध्वा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध् के लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चययुक्त (अभि सम् बभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे”

समीक्षक-- स्वामी जी का यह भाष्य पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी के सर में बुद्धि कम गोबर ज्यादा भरा है देखिए, इधर पति मरा पड़ा है, स्त्री जिसका वह पालक पोषक नाथ था, उसके शोक में विलाप करती है, और स्वामी जी उसी समय उसको कहने लगे कि इसे छोड़ औरों को पति बना लें, शोक हे! ऐसी बुद्धि पर, स्वामी जी ने सिर्फ अपना

स्वार्थ साधने के लिए वेद मंत्रों के अर्थ का अनर्थ किया है देखिए इसका सही अर्थ इस प्रकार है--

हे (नारि)= स्त्री, तेरे पति मृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं इसलिए, (उदीर्ष्व)= उठ और इस, (जीवलोकम् अभि)= जीवित संसार अपने पुत्रादि और घर-परिवार का तू ध्यान कर, इस प्रकार (गतासुम)= गत प्राण, (एतम्)= इस पति के, (उपशेष)= समीप बैठ शौक करने का क्या लाभ? (एहि)= उठ और अपने घर को गमन कर, (हस्तग्राभस्य)= अपने गर्भ में सन्तान को स्थापित करने वाले, (तव पत्युः)= अपने पति की,(इदं जनित्वम्)= इस सन्तान को, (अभि)= ध्यान करती हुई, (संबभूथ)= अपने स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिए यत्नशील हो।

अब विचारने की बात यह है इसमें नियोग प्रचारक कौन सा शब्द है? इस मंत्र में तो नियोग का कुछ भी आशय नहीं निकलता, और जबकि उसके पास बालक मौजूद हैं फिर भला उसे इस महाअधर्म व्यभिचार नियोग की क्या आवश्यकता है? अब बुद्धिमान स्वयं विचारें की स्वामी जी ने इसमें कितने मंत्रार्थ बदले हैं और अर्थ का अनर्थ कर लोगों को भ्रमित करने का प्रयास किया है। और सुनिये,

(दयानंद कृत ऋग्वेदभाष्य, भाष्य-४)

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।

प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥ ~अथर्व० {का० १४, अनु० २, मं० १८}

दयानंद अपने ऋग्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि—

“हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देने वली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी (सुयमा)

अच्छे प्रकार धर्म-नियम में चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्रा विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि से सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवर को (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बंधी (अग्निम्) अग्निहोत्रा का (सपर्य) सेवन किया करें”

समीक्षक-- स्वामी जी यहाँ भी अर्थ का अनर्थ करने से न चूंके, देखिए इस मंत्र में **“देवृकामा”** इस पद से यह अर्थ सिद्ध नहीं होता कि वह देवर से भोग करना चाहती है, और जबकि पति है तो भला वह दुसरे पुरुष की इच्छा क्यों करेगी? और कामना विद्यमानता में नहीं होती, अविद्यमानता में होती है, यदि वह देवर को पति रूप में चाहती तो **“देवरि पतिकामा”** ऐसा प्रयोग हो सकता है, सो मंत्र में किया नहीं इससे नियोग सिद्ध नहीं होता, किन्तु यह ऐसे स्थान का प्रयोग है, जिस स्त्री के देवर नहीं वह चाहती है कि यदि मेरे ससुर के बालक हो तो मैं देवर वाली होऊं, ऐसी स्त्री को देवृकामा कहते हैं, जैसे भ्रातृ रहित कन्या में “भ्रातृकामा” यह प्रयोग बनता है कि मेरे भाई हो तो मैं बहन कहाऊं, ऐसे ही यह देवृकामा शब्द है इससे नियोग सिद्ध नहीं होता, अब इसका यथार्थ अर्थ सुनिए--

हे स्त्री तू, (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि)= पति और देवर को दुख न देने वाली, (एधि)= वृद्धि को प्राप्त हो, अर्थात देवर आदि कुटुम्बियों से विरुद्ध मत करना, (इह)= इस गृहाश्रम में, (पशुभ्यः)= पशुओं के लिये, (शिवा)= कल्याणकारी, (सुयमा)= अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने वाली, (सुवर्चाः)= रूप गुणयुक्त, (प्रजावती)= उत्तम पुत्र पौत्रादि सहित, (वीरसूः)= वीर पुत्रों को जन्म देने वाली, (देवृकामा)= देवर के होने की प्रार्थना करने वाली, (स्योना)= सुखिनी, (इमम्)= इस, (गार्हपत्यम्)= गृहस्थ सम्बन्धी, (अग्निम्)= अग्निहोत्र को, (सपर्य)= सेवन किया करें।

यह इसका अर्थ है स्वामी जी ने यह नहीं सोचा कि उनका यह भाष्य और भी कोई देखेगा तो क्या कहेगा? यह विवाह सम्बन्धी मंत्र नियोग में लगाये हैं, धन्य है तुम्हारी बुद्धि, अब यदि तुम्हारी अश्लील बुद्धि में केवल उल्टी बातें ही आती है तो सुनिये इस श्रुति में कथन है कि--

तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम्॥ ~अथर्व० {१४/२/२२}

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।

स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥ ~अथर्व० {१४/२/२७}

हे स्त्री तू ससुर, पति और घर के कुटुम्बियों सभी के अर्थ सुख देने वाली हो।

अब यदि तुम्हारा किया अर्थ ही सही माने तो यहाँ पति, ससुर दोनों के लिए (स्योना) पद आया है अर्थात सुख देने वाली हो एवं सब ही कुटुम्बियों को सुख देने वाली लिखा है, तो क्या जो पति के संग व्यवहार करें, वही सबके साथ करें? यह कभी नहीं हो सकता पति को और प्रकार का सुख, और ससुरादि को सेवा आदि से सुख देती है, यह नहीं कि सुख देने से सबके संग भोग के ही अर्थ हो जाये, इससे स्वामी जी के किये सब अर्थ भ्रष्ट है मिथ्या है,

इससे यही सिद्ध होता है कि स्वामी का चलाया यह महाअधर्म व्यभिचार नियोग झूठ से सिद्ध होता है, इसी प्रकार दयानंद ने अन्य ग्रंथों के अर्थ का अनर्थ कर नियोग सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है,

दयानंदी-- तुम नियोग को वेद विरुद्ध कहते हो तो क्या जो ये मनुस्मृति आदि ग्रंथों में नियोग कथन किया है वह सब मिथ्या है?

देखिये स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मृति से नियोग का प्रमाण देते हुए यह लिखा है कि—

“ प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।

विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रीस्तु वत्सरान्॥१॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजाः।

एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥२॥ ~मनु० {९/७६,८१}

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के, पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे॥१॥

वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (विवाह से आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहै), सन्तान होकर मर जायें तो दशवें, जब-जब हो तब-तब कन्या ही होवे पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे॥२॥“

क्या इन प्रमाणों से नियोग सिद्ध नहीं होता? कहिये!

समीक्षक-- यह अर्थ दयानंद के कपोल भंडार से निकलें है, इन दोनों ही श्लोकों में कहीं भी नियोग तो क्या नियोग की गंध तक नहीं है, और यह क्या बात हुई कि यहाँ पहला श्लोक तो ९ वें अध्याय का ७६ वां और दूसरा श्लोक ८१ वां लिखा है और इन दोनों का दयानंद ने एक ही प्रसंग लगा दिया, जबकि इनमें से एक में भी नियोग तो क्या नियोग की गंध तक नहीं है, देखों इससे पहले यह श्लोक हैं कि--

विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः।

अवृत्तिकर्शिता हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिमत्यपि॥७४॥

विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेन्नियममास्थिता।

प्रोषिते त्वविधायैव जीवेच्छिल्पैरगर्हितैः॥७५॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः।

विद्यार्थं षड्यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान्॥७६॥

इसका अर्थ यह है कि-- जब कोई पुरुष परदेश को जाये तो प्रथम स्त्री के खान पान का प्रबंध करता जाये, क्योकि बिना प्रबंध क्षुधा के कारण कुलीन स्त्री भी दूसरे पुरुष की इच्छा कर सकती हैं॥७४॥

खान पान की व्यवस्था करकें परदेश जाने के अनन्तर उस पुरुष की स्त्री नियम अर्थात पतिव्रत से रहकर अपना समय व्यतीत करें, और जब भोजन को न रहे या पुरुष पुरा बंदोबस्त करकें न गया हो तो पति के परदेश होने तक शिल्पकर्म जो निन्दित न हो अर्थात सूत कातना हस्त से काढना आदि कर्मों से गुजरा करें॥७५॥

यदि वह परदेश धर्म कार्य को गया हो तो आठ वर्ष, विद्या पढने गया हो तो छ: वर्ष, धन यश को गया हो तो तीन वर्ष तक राह देखें, पश्चात पति के पास जहाँ हो वहाँ चली जावें॥७६॥

अब तुम ही बताओ कि इसमें नियोग की बात कहा से आ गई और यह हम पहले ही कह चुके हैं कि मनु जी इस महाअधर्म नियोग का समर्थन नहीं करते, बल्कि मनु जी तो इसे पशुधर्म बताते हुए, इस महाअधर्म व्यभिचार नियोग की घोर निंदा करते हैं, सुनिये मनु जी नियोग की निंदा करते हुए मनुस्मृति में यह लिखते हैं कि--

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्व चित्।

न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥ {९.६५}

पाणिग्राहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा।

पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किं चिदप्रियम्॥ {५/१५६}

कामं तु क्सपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः।

न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु॥ {५/१५७}

आसीता मरणात्क्सान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।

यो धर्म एकपत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्॥ {५/१५८}

अनेकानि सहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।

दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम्॥ {५/१५९}

मृते भर्तरि साढ्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।

स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः॥ {५/१६०}

अपत्यलोभाद्या तु स्त्री भर्तारमतिवर्तते।

सेह निन्दामवाप्नोति परलोकाच्च हीयते॥ {५/१६१}

पतिं हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते।

निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते॥ {५/१६३}

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।

श्रृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥ {५/१६४} ~मनुस्मृति

जो वेद मंत्र विवाह के संबंध में कहें गए हैं उसमें न तो नियोग का वर्णन है और न ही विधवा विवाह का॥

अगले जन्म में अच्छा पति पाने की इच्छा रखने वाली स्त्री को इस जन्म में विवाहित पति की जीवन-अवधि में अथवा उसकी मृत्यु हो जाने पर उसे बुरा लगने वाला कोई कार्य नहीं करना चाहिए॥१५६॥

स्त्री अपने पति की मृत्यु हो जाने के पश्चात फल-फूल और कन्द-मूल खाकर अपना शरीर चाहे सुखा ले पर भूल कर भी दूसरे पुरूष के संग की इच्छा न करें॥१५७॥

पतिव्रता स्त्री को पति के मृत्यु के बाद पुरा जीवन क्षमा, संयम, तथा ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गुजारना चाहिए, उसे सदाचारणी स्त्रीयों द्वारा आचरण योग्य उत्तम धर्म का पालन करने पर गर्व करना चाहिए॥१५८॥

यदि किसी स्त्री के पति की मृत्यु बिना किसी संतान को उत्पन्न किए हो जाए तब भी स्त्री को अपनी सद्गति के लिए दूसरे पुरुष का संग नहीं करना चाहिए,॥१५९॥

सन्तान उत्पन्न नही करने वाले ब्रह्मचारीयों की तरह पति की मृत्यु के बाद ब्रह्मचर्य पालन करने वाली स्त्री पुत्रवती नही होने पर भी स्वर्ग प्राप्त करती है॥१६०॥

पुत्र प्राप्ति की इच्छा से जो स्त्री पतिव्रत धर्म को तोड़ कर दूसरे पुरुष के साथ संभोग करती है उसकी इस संसार में निंदा होती है तथा परलोक में बुरी गति मिलती है॥१६१॥

कम गुणों वाले अपने पति का त्याग कर जो स्त्री अधिक गुणों वाले अन्य पुरुष का संग करती हैं वह इस संसार में निंदा का पात्र बनती है और दो पुरूषों की अंकशायिनी बनने का कलंक लगवाती है॥१६३॥

पति के सिवाय दूसरे पुरुष से संभोग करने वाली विवाहित स्त्री इस संसार में निंदा का पात्र तो बनती ही है और मरने के बाद गीदड़ की योनि में जन्म लेती हैं, वह कोढ़ जैसे अनेक असाध्य रोगों से पीड़ा पाति है॥१६४॥

अब कहों क्या तुमने और तुम्हारे इस निर्बुद्धि दयानंद ने मनुस्मृति में यह श्लोक नहीं देखें? अवश्य देखें होंगे परन्तु लिखते कैसे इच्छा तो भारतवर्ष की समस्त स्त्रीयों को व्यभिचारीणी बनाने की थी, भारतवर्ष को इस पशुधर्म की ओर धकेलने की थी, और देखिये तुम्हारे स्वामी जी ने जो यह दूसरा श्लोक लिखा है, **(वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे०)** इसके अर्थ भी गडबड लिखें हैं, सुनिये इसका सही अर्थ इस प्रकार है कि--

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजाः।

एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी॥

पत्नि यदि वन्ध्या हो तो आठ वर्ष, बार-बार मृत बच्चों को जन्म देती हो तो दश वर्ष, या केवल कन्याओं को ही जन्म देती हों तो ग्यारह वर्ष उपरान्त

पति दुसरा विवाह करने का अधिकारी है और यदि पत्नि अप्रिय बोलने वाली है तो पति तत्काल दुसरा विवाह कर सकता है।

यह इसका अर्थ है, अब कहों इसमें नियोग की बात कहाँ से आ गई, भला इसमें नियोग विषयक ऐसा कौन सा पद है जिससे कि नियोग सिद्ध होता है, यह नियोग की बात तुम्हारे स्वामी जी के कपोल भंडार से प्रकट हुई है, इस कारण दयानंद के किये सभी अर्थ अशुद्ध होने से, मानने योग्य नहीं,

दयानंदी-- तो क्या मनुस्मृति से नियोग सिद्ध नहीं होता?

समीक्षक-- नहीं, और इस बात का प्रमाण हम पूर्व लिख आये हैं।

दयानंदी-- यदि ऐसा मानते हो तो सुनिये, स्वामी दयानंद जी ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में पुनः मनुस्मृति से प्रमाण लिखा है कि—

“देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिाया सम्यघ् नियुक्तया।

प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये॥१॥

ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्या यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।

पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि॥२॥

औरसः क्षेत्राजश्चै०॥३॥ ~मनु०{अ० ८, श्लोक ५८-६०}

(सपिण्ड) अर्थात् पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपने से उत्तम जातिस्थ पुरुष से विध्वा स्त्री का नियोग होना चाहिये, परन्तु जो वह मृतस्त्रीपुरुष वा विध्वा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो तो नियोग होना उचित है, और जब सन्तान का सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवे, जो आपत्काल अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने में बड़े भाई की स्त्री से छोटे का और छोटे की स्त्री से बड़े भाई का नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर भी पुनः वे नियुक्त आपस में समागम करें तो पतित हो जायें, अर्थात् एक नियोग में दूसरे पुत्र के गर्भ रहने तक नियोग की अवधि है”

अब तुम कहों क्या इससे नियोग सिद्ध नहीं होता?

समीक्षक-- तुम चुतिया हो, और तुमसे भी बड़ा चुतिया है तुम्हारा यह निर्बुद्धि दयानंद, सुनो तुमने यह श्लोक तो पढ़े पर यह जाना कि यह श्लोक यहाँ किस सन्दर्भ में लिखा है, मनुस्मृति में लिखीं सब ही बातों को मनु जी का मत जान लेना, इसी से दयानंद की बुद्धि का पता चलता है, सुनिये यह मत मनु जी का नहीं बल्कि राजा वेन का है जिसे मनु जी अपने ग्रंथ में इस कारण कथन किया है क्योंकि उस समय राजा वेन के राज में यह पशुधर्म नियोग चलन में था, यह पशुधर्म राजा वेन ने आरंभ किया और उसने नियोग के जो-जो नियम चलाए उसे मनु जी ने अपने ग्रंथ में लिखा है जिससे सब मनुष्य यह बात भलीभाँति समझ सकें कि क्या धर्म है और क्या अधर्म? और यह हम पूर्व ही सिद्ध कर आये हैं कि मनु जी इस पशुधर्म नियोग के घोर विरोधी थे, सुनिये मनु जी, राजा वेन द्वारा चलाये इस महाअधर्म नियोग की निंदा करते हुए लिखते हैं कि--

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या या गुरुपत्न्यनुजस्य सा।

यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता॥ -{९/५७}

व्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।

सृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते॥ -{९/३०}

नान्यस्मिन् विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभिः।

अन्यस्मिन् हि नियुञ्जाना धर्मं हन्युः सनातनम्॥ -{९/६४}

नोद्वाहिकेषु मन्त्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्व चित्।

न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः॥ -{९/६५}

अयं द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हितः।

मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति॥ -{९/६६}

स महीमखिलां भुञ्जन् राजर्षिप्रवरः पुरा।

वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः॥ -{९.६७}

ततः प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।

नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधवः॥ -{९/६८} ~मनु०

छोटे भाई के लिए बड़े भाई की पत्नी गुरु पत्नी तुल्य, और बड़े भाई के लिए छोटे भाई की पत्नी पुत्रवधू जैसी होती है॥

यदि विवाहित स्त्री परपुरूष का संग करती है तो वह इस लोक में निन्दित होती है, और अनेक यौन सम्बन्धी रोगों से ग्रसित हो जाती है तथा मृत्यु के बाद गीदड़ी के रूप में जन्म लेती है॥

ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की विधवा स्त्री को परपुरूष का संग नहीं करना चाहिए, दूसरे पुरुष का संग करने से स्त्री सनातन एक पतिव्रत धर्म को नष्ट करती है और उससे उत्पन्न संतान धर्म का विनाश करने वाली होती है॥

जो वेद मंत्र विवाह के सम्बन्ध में कहें गये हैं, उनमें न तो नियोग का वर्णन है और न ही विधवा विवाह का॥

नियोग का प्रयोग राजा वेन के शासनकाल में अवश्य हुआ था लेकिन तब भी विद्वज्जनों ने इसे पशुधर्म बताते हुए मनुष्यों के लिए निषिद्ध बताया था॥

जो राजा वेन सम्पूर्ण धरती को भोगने वाला चक्रवर्ती सम्राट था, कामवासना के वशीभूत हो उसी राजा ने वर्णसंकर संतान उत्पन्न करने के दुष्चक्र(नियोग) का आरम्भ किया॥

उस राजा वेन के समय से यह रीति चली और जो उसकी मति मानने वाले लोग शास्त्र के न जानने वाले विधवा स्त्री को परपुरूष के साथ योजना करते हैं, उस विधि को साधु पुरुष निन्दा करते हैं॥

इससे सिद्ध होता है कि यह पशुधर्म नियोग राजा वेन ने आरम्भ किया, और मनु जी नियोग प्रथा के घोर विरोधी थे, मनु जी ने इस महाअधर्म

नियोग की तुलना पशुधर्म से करते हुए इसकी बहुत निन्दा की है, जो विद्वान लोग हैं वे इस बात को भलीभाँति समझते हैं, मुझे तो तुम्हारे स्वामी जी राजा वेन के ही अवतार मालूम पड़ते हैं, या राजा वेन के भी बाप, दादा या गुरु कहूं तो गलत नहीं होगा, क्योकि उसने तो केवल अपनी ही जाति में नियोग चलाया और एक ही संतान उत्पन्न करने को कहा, परन्तु तुम्हारे दयानंद तो सब ही जाति में नियोग करना और ग्यारह तक पति बनाने की आज्ञा करते हैं, यह पशुधर्म दयानंद ने चलाया जो राजा वेन से प्रारम्भ हुआ है इससे पता चलता है कि दयानंद धर्म के नहीं अधर्म के फैलाने वाले हैं।

अब जबकि वेदादि प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि नियोग झूठ से सिद्ध होता है, धर्मशास्त्रों के अनुसार भी विद्वज्जनों ने इसे पशुधर्म बताते हुए मनुष्यों के लिए निषिद्ध बताया और इस महाअधर्म व्यभिचार नियोग की खुब निंदा की है, फिर भी न जाने क्यों स्वामी नियोगानंद जी बार-बार वेदादि ग्रंथों के अर्थ का अनर्थ कर इस पशुधर्म नियोग को सिद्ध करने का असफल प्रयास करते हैं, इससे मन में शंका उत्पन्न होती हैं कि स्वामी जी अपने पिता की ही पैदाइश है या फिर ग्यारह नियोग की!

महर्षि या फिर महाचुतिया

इस लेख के माध्यम से मैं आप लोगों के सामने दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य के कुछ ऐसे भाष्य रख रहा हूँ जिसे पढ़कर एक बार को आप लोगों की बुद्धि भी चकरा जायेगी आप लोगों को यही समझ में नहीं आयेगा कि दयानंद के इन भाष्यों पर हंसें, क्रोधित हो या फिर दयानंद की मानसिक स्थिति को लेकर दुख व्यक्त करें, इस लेख को लिखने का मेरा उद्देश्य सिर्फ इतना है कि जो लोग दयानंद को संस्कृत का विद्वान समझते हैं, उन्हें यह पता होना चाहिए कि दयानंद को संस्कृत तो छोडिये संस्कृत का 'स' भी नहीं आता था, या यह कहे कि उन्होंने संस्कृत की कभी शक्ल तक न देखी होगी तो कहना गलत न होगा, और जब ऐसा मंदबुद्धि व्यक्ति वेदों का भाष्य करने बैठ जाये तो अर्थ का किस प्रकार अनर्थ करता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है, वह आपके सामने ही है देखिये--

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-१)

होता यक्षद् अश्विनौ छागस्य हविष ऽ आत्ताम् अद्य मध्यतो मेद ऽ उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासे ऽ अज्राणां यवसप्रथमानाम्ँ सुमत्क्षराणाम्ँ शतरुद्रियाणाम् अग्निष्वात्तानां पीवोपवसानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत ऽ उत्सादतो ङ्गाद्-अङ्गाद् अवत्तानां करत एवाश्विना जुषेताम्ँ हविर् होतर् यज॥ ~यजुर्वेद {२१/४३}

दयानंद अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ करते हुए अपने लाडले शिष्यों के लिए फरमाते है कि--

“हे (होत:) देनेहारे! जैसे, (होता) लेनेवाला,,,, (छागस्य) बकरा आदि पशुओं के, (मध्यत:)- बीच से, (हविष:)- लेने योग्य पदार्थ, (मेद:)- अर्थात घी, दूध आदि,,,,,, (आत्ताम्) लेवें वा,,,,, (नूनम्) निश्चय करकें, (घस्ताम्) खावें वा,,,,,, (हवि:) उक्त पदार्थों से खाने योग्य पदार्थ का,,,,,, (जुषेताम्) सेवन करें”

भावार्थ में स्वामी जी लिखते हैं कि "जो छागस्य (अर्थात बकरा) आदि पशुओं की रक्षा कर उनके दूध घी आदि का अच्छी प्रकार सेवन करते हैं उनके सब अंग रोग मुक्त हो सुख को प्राप्त करते हैं

समीक्षक-- वाह रे! सत्यार्थ प्रकाश के रचने वाले, वेद ऋचाओं के अर्थ का अनर्थ करने वाले, क्या कहने तेरे! **(छागस्य)** अर्थात बकरा आदि पशुओं से लिए दूध घी आदि का अच्छी प्रकार सेवन करें, धन्य हे! निर्बोधानंद तेरी बुद्धि, अच्छी शिक्षा लिखीं हैं अपने लाडले शिष्यों को बस यही शेष रह गया था, सो भी तुमने अपने शिष्यों को कथन कर दिया, अभी तुम्हारे चेले कम नमूने थे जो उन्हें नर बकरे का दूध घी खाना लिख दिया, इस श्रुति का अर्थ लिखने से पूर्व जरूर स्वामी जी ने (छागस्य) बकरे का दूध पिया होगा, जिससे उनकी मति भ्रष्ट हो गई, इसी कारण स्वामी जी इस श्रुति में (छागस्य) नर बकरे का दूध घी खाना लिखते हैं, बकरी का नहीं खास बकरों का, धन्य हे! ऐसा भाष्यकार और धन्य है ऐसे भाष्यों को मानने वाले अक्ल से पैदल समाजी, अब आपको स्वामी जी की बुद्धि के बारे में क्या कहें? स्वामी जी ने इस श्रुति के अर्थ का कैसा अनर्थ किया है वह आप लोगों के सामने ही है, ये दयानंदी कहते हैं कि हम वैदिक है और हमें केवल दयानंद कृत वेदभाष्य ही मान्य है, हम जितने भी कार्य करते हैं उसी के अनुकूल करते हैं,

तो मैं उनसे पूछना चाहूँगा, क्या मेरे दयानंदी भाई रोज **(छगस्य)** नर बकरे का दूध, दही, घी आदि खाते हैं, यदि नहीं खाते तो वेद विरुद्ध करते हैं क्योकि जब तक ये दयानंद ने भाष्यानुसार बकरे का दूध, घी नहीं खाते, तब तक वैदिक न कहलायेंगे, और यदि एक बार को दयानदी खाना भी

चाहे तो खायेंगे कहाँ से, क्या संसार में बकरे का दूध, दही, घी आदि होता भी है? जो ये खायेंगे, बकरों का दूध, घी आदि न तो इस संसार में कभी हुआ है और न ही होगा, ऐसी असंभव चिज के खाने को लिखने से ही दयानंद की बुद्धि का पता लगता है, कोई कितना ही बड़ा मुर्ख क्यों न हो, उसकी बुद्धि कितनी ही घुटनों में क्यों न हों वह भी ऐसी बिना सिर की बात न लिखेगा, जैसे स्वामी ने लिखा है, दयानंद के इस भाष्य को पढ़कर ही पता लग जाता है कि स्वामी जी ने उस दिन लौटा भरकर पिया होगा, अब बकरे का दूध पिया या कुछ और ही पी लिया यह कह पाना मुश्किल है, और सुनिये,

(दयानंद कृत यजुर्वेदभाष्य, भाष्य-२)

सूपस्था ऽ अद्य देवो वनस्पतिर् अभवद् अश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैर् अपुर् अश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान्॥ ~यजुर्वेद {२१/६०}

स्वामी जी अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि--

“हे मनुष्यों! (अश्विभ्याम्)- प्राण और अपान के लिए, (छागेन)- दु:ख विनाश करने वाले छेरी आदि पशु से, (सरस्वत्यै)- वाणी के लिए, (मेषेण)- मेंढ़ा से, (इन्द्राय)- परम ऐश्वर्य के लिए, (ऋषभेण)- बैल से, (अक्षन्)- भोग करें”

स्वामी जी अपने इस भाष्यानुसार अपने लाडले शिष्यों के लिए फरमाते है, कि यदि कोई दयानंदी हमेशा दुखी रहता हो, जीवन में दिक्कत परेशानीयाँ ज्यादा रहती हो, तो वो दु:ख के विनाश के लिए छेरी (बकरी) आदि पशु के साथ भोग किया करें,

और यदि किसी दयानंदी की वाणी खराब हो गई हो जैसे तुतलापन हो, गला बैठ गया हो या फिर जन्म से गूंगा आदि हो तो ऐसे समाजी, वाणी के लिए मेंढ़ा (मेंढक) से भोग किया करें,

और परम ऐश्वर्य की कामना रखने वाले सभी दयानंदी परम ऐश्वर्य के लिए बैल से भोग किया करें,

वाह! दयालु हो तो ऐसा, देखिये स्वामी जी ने किस युक्ति से अपने लाडले शिष्यों का धन बचाया है, भारतवर्ष में अब तक लोग यह शिकायत किया करते थे कि यहाँ विवाहों में धन अधिक खर्च होता है, लेकिन आज तक कोई इसका वन्दोवस्त न कर सका, परन्तु स्वामी जी ने युक्ति के साथ वह वन्दोवस्त भी कर दिया, अब दयानंदीयों को न तो खर्च करने की जरूरत और न ही विवाह करने की जरूरत, दोनों आवश्यकताएँ मिट गई, क्योकि दयानंदी अब अपने वेदभाष्यों के विरुद्ध स्त्री के साथ भोग ही नहीं करेंगे, जब इच्छा होगी किसी बकरी, मेंढे या फिर बैल के साथ भोग कर लिया करेंगे,

इसके अलावा एक और अन्याय हो गया वह यह कि हमारे दयानंदी भाई तो बैल से भोग कर परम ऐश्वर्य वाले हो जायेंगे, और उनसे भिन्न मत वाले हमेशा गरीब ही रहेंगे, क्योकि इनके हाथ तो किस्मत की चमचमाती छडी लग गई जहाँ जरा सी भी सम्पत्ति घटी फिर बैल के साथ भोग कर लेंगे और इनसे भिन्न मत वाले इस निन्दित घृणा मुक्त कर्म कर न सकेंगे, और हमेशा गरीब ही रहेंगे, इसके विपरीत समाजी ऐश्वर्यवान होते जायेंगे फिर चाहे कोई रोजगार करें या न करें,

मुझे इस बात का बड़ा संदेह हो गया कि हमारे दयानंदी भाई उचित अनुचित जो कुछ भी दयानंद लिख गये यह सबको सत्य ही मानते हैं, अब आप सोचिये कि इस प्रकार की उट पटांग बातें लिखने वाले दयानंद की बुद्धि कैसी रही होगी? और सुनिये,

इसी प्रकार अध्याय १६ मंत्र १७ में दयानंद राजा को आम के वृक्ष काटना लिखते हैं

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः॥१६/१७

स्वामी जी अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका अर्थ यह लिखते हैं कि—"हे शत्रुताड़क सेनापति! (वृक्षेभ्य:)- आम्रादि वृक्षों को काटने के लिए, (नम:)- वज्रादि शस्त्रों को ग्रहण कर"

स्वामी जी राजा के लिए लिखते हैं कि वो आम आदि के जितने भी संसार को लाभ पहुंचाने वाले वृक्ष है उन्हें कटवा दें, वाह स्वामी जी वाह क्या उत्तम बात सोची है, जो वृक्ष संसार को लाभ पहुचाते है उन्हीं को कटवा दें, उसी का नाम तो उपकार है मालूम होता है इस दिन लौटा भरकर भांग पिया है, और सुनिये,

फिर आगे यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ५२ के भाष्य में अपने शिष्यों को आज्ञा देते हैं कि तुम राजा से कहों की सूवर के समान सोने वाले राजा,

विकिरिद्र विलोहित नमस् ते ऽ अस्तु भगवः।

यास् ते सहस्रमँ् हेतयो ऽन्यम् अस्मन् नि वपन्तु ताः॥ ~यजुर्वेद {१६/५२}

"हे (विकिरिद्र)- विशेषकर सूवर के समान सोने वाले, (भगव:)- ऐश्वर्ययुक्त राजन्!"

वाह वाह राजा के लिए बड़ी ही अच्छी उपमा दी है, जिस ईश्वर को अपने वेदभाष्यों में राजा बोलते आए, और फिर उसी राजा को सूवर की उपमा ये आप जैसे धूर्त को ही शोभा देता है, दयानंद की बुद्धि का पता तो यही लग जाता है, जिस राजा को प्रजा पिता तुल्य मानती है उसे स्वामी जी सूवर की भांति सोने वाला लिखते है,

हमारे यहाँ तो राजा को ऐसे अपशब्द नहीं बोले जाते, हो सकता है आर्य समाज में राजा को सूवर के तुल्य समझा जाता हो, शायद समाजी अपने राजा अर्थात दयानंद को इसी प्रकार बोलते हो, की "हे भंग के नशे में विशेषकर सूवर की भांति सोने वाले राजन्" और फिर दयानंद ने यही बात अपने वेदभाष्य में लिख दी हो, और सुनिये,

फिर आगे अध्याय ३७ मंत्र ७ में दयानंद लिखते हैं कि- “ईश्वर हमारे भाईयों को घोड़े की लेंडी अर्थात लीद से तपाता है”

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥ ~यजुर्वेद {३७/९}

“हे मनुष्य! जैसे मैं, (त्वा)- तुझको, (अश्वस्य)- घोड़े की, (शक्ना)- लेंडी, लीद से, (धूपयामि)- तपाता हूँ”

धन्य है ऐसे भाष्य को जिसके हुक्म से हमारे दयानंदी भाई रोज घोड़े की लीद से तपते है,

धन्य है ऐसे भाष्यकार और धन्य है ऐसे भाष्यों को मानने वालें,

दयानंद मत पशुहिंसा धर्म का अंग

॥जिहादी दयानंद॥

दयानंद यजुर्वेदभाष्य, अध्याय १३ मंत्र ४८, ४९,

इमं मा हिँ सीर् एकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु। गौरम् आरण्यम् अनु ते दिशामि तेन चिन्वानस् तन्वो नि षीद। गौरं ते शुग् ऋच्छतु यं द्विष्मस् तं ते शुग् ऋच्छतु॥ ~यजुर्वेद {१३/४८}

इमँ् साहस्रँ् शतधारम् उत्सं व्यच्यमानँ् सरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानाम् अदितिं जनायाग्ने मा हिँ् सीः परमे व्योमन्। गवयम् आरण्यम् अनु ते दिशामि तेन चिन्वानस् तन्वो नि षीद। गवयं ते शुग् ऋच्छतु यं द्विष्मस् तं ते शुग् ऋच्छतु॥

~यजुर्वेद {१३/४९}

दयानंद अपने यजुर्वेदभाष्य में इसका यह अर्थ लिखते हैं कि--

“मनुष्यों को उचित है कि जिनके मारने से जगत् की हानि और न मारने से सबका उपकार होता है, उनका सदैव पालन पोषण करें, **और जो पशु तुम्हारे लिए लाभकारी न हों उनको मारें”**॥४८॥

“हे (अग्ने) दया को प्राप्त हुए परोपकार राजन्, (ते) तेरे राज्य में, (आरण्यम्)- वन में रहने वाली, **(गवयम्)- गौ जाति की नीलगाय से खेती की हानि होती है इस कारण, (तेन)- उसके मारने को, (अनुदिशामि)- उपदेश करता हूँ”**

इसके भावार्थ में स्वामी जी लिखते हैं कि-- और गौ जाति से सम्बन्ध रखने वाली, गौ के समान दिखने वाली नीलगाय आदि जो जंगल में रहती है, उससे खेती की हानि होती है इसलिए वह मारने योग्य है,

समीक्षक-- धन्य है ऐसा भाष्य करने वाला मंद बुद्धि दयानंद और धन्य है इन भाष्यों को मानने वाले अक्ल से पैदल समाजी, यह स्वामी जी को क्या सुझी की धर्म कर्म छोड़ हिंसा का मार्ग पकड़ लिया, यह शिक्षा वेद में देखने को तो नहीं मिलती, यह तो वेद के नाम पर आपने अपने शिष्यों को खुली छूट दे दी, कि नीलगाय आदि जो पशु तुम्हारे लिए लाभकारी नहीं उन्हें मारें, शोक हे! ऐसी बुद्धि पर, देखिये इसका यह अर्थ नहीं है जैसा तुमने लिखा है यह वेद श्रुति प्रार्थना के अर्थ है इस श्रुति में यह प्रार्थना है कि--

“हे अग्ने! यह गौ श्रेष्ठ स्थान में रहने वाली सहस्रों उपकार करने वाली, दुग्धादि की सैकड़ों धारा वाली, लोकों में विविध व्यवहार को प्राप्त और मनुष्यों का हित करने को घृत, दुग्ध को देने वाली है, अदिति रूपा यह गौ आपके इस स्वरूप को देख पीडित न हो इसके विपरीत आरण्य में रहने वाले गवय आदि पशुओं (जिनसे खेती की हानि होती है) को आपसे भय प्राप्त हो”

इसी कारण लोग वनीय पशुओं से अपनी फसल आदि की रक्षा करने के अर्थ मसाल आदि जलाकर रखते हैं जिस कारण वन में रहने वाले पशु उनसे दूर ही रहते हैं क्योंकि सब ही प्रकार के वन में रहने वाले पशु अग्नि से भय खाते हैं और उनसे दूर ही भागते है, यह इस श्रुति का आशय है इसमें कहीं भी किसी भी जीव को मारना कथन नहीं किया है, क्योकि किसी भी प्रकार की हिंसा अधर्म होने से वेद विरुद्ध है, यह बात दयानंदीयों को भी समझनी चाहिए, जबकि दयानंद ने अपने वेदभाष्य में अपने लाडले शिष्यों को खुली छूट दे दी कि जो पशु तुम्हारे लिए लाभकारी नहीं है उन्हें मार दो, और यह अर्थ स्वामी जी से किसी भूलवश नहीं हुआ,

स्वामी जी अपने अन्य लेखों में भी पशुहिंसा का समर्थन कर चुके हैं देखिये जैसे सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण के पृष्ठ १४६ में लिखा है कि “मांस के पिण्ड देने में तो कुछ पाप नहीं”

पृष्ठ संख्या १७२ में लिखा है कि “यज्ञ के वास्ते जो पशुओं की हिंसा है सो विधिपूर्वक हनन है”

पृष्ठ संख्या ३०२ में है कि “कोई भी मांस न खाएँ तो जानवर, पक्षि, मत्स्य और जल इतने है, की उनसे शत सहस्र गुने हो जाएं, फिर मनुष्यों को मारने लगें और खेतों में धान्य ही न होने पावे फिर सब मनुष्यों की आजीविका नष्ट होने से सब मनुष्य नष्ट हो जाएं”

पृष्ठ ३०३ में लिखा है कि “जहाँ जहाँ गोमेधादिक लिखे हैं वहाँ वहाँ पशुओं में नरों का मारना लिखा है और एक बैल से हजारों गैया गर्भवती होती है, इससे हानि भी नहीं होती और जो बन्ध्या गाय होती है उसको भी योमेघ में मारना क्योकि बन्ध्या गाय से दुग्ध और वत्सादिको की उत्पत्ति होती नहीं”

पृष्ठ ३६६ में लिखा है कि “पशुओं को मारने में थोड़ा सा दु:ख होता हैं परन्तु यश में चराचर का अत्यन्त उपकार होता है”

यह सब बातें सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में स्वामी जी ने ही लिखी है जिसे बाद में सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण में संशोधन कर यह कहकर हटा दिया गया, कि यह बातें लिखने व छापने वालों की गलती से छप गई थी,

निम्न लेख को पढ़कर विद्वान लोग सम्यक् समझ सकते हैं कि दयानंद जी धर्म के फैलाने वाले थे या फिर अधर्म के, और सुनिये आगे अध्याय १५ मंत्र १५ में दयानंद लिखते हैं कि--

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस् तस्य रथगृत्सश् च रथौजाश् च सेनानीग्रामण्यौ। पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ दङ्क्षणवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस् तेभ्यो नमो ऽ अस्तु ते नो ऽवन्तु ते

नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश् च नो द्वेष्टि तम् एषां जम्भे दध्मः॥
~यजुर्वेद {१५/१५}

“जो (अयम्)- यह, (दङ्क्षणवः)- मांस और घास आदि पदार्थों को खानेवाले पशु आदि उनके ऊपर, (हेतिः)- बिजुली गिरे,,,,, (यः)- जो, (नः)- हमसे, (द्वेष्टि)- विरोध करें, (तम्)- उसको हम लोग, (एषाम्)- इन व्याघ्रादि पशुओं के, (जम्भे)- मुख में, (दध्मः)- स्थापन करें”

समीक्षक-- दयानंद की हिंसक बुद्धि देखें दयानंद लिखते हैं कि (दङ्क्षणवः)- मांस और घास आदि पदार्थों को खानेवाले पशु आदि उनके ऊपर, (हेतिः)- बिजुली गिरे, दयानंद ने यहाँ पशुहिंसा को भी धर्म का अंग बना दिया, धन्य है स्वामी जी तुम्हारी बुद्धि, अब दयानंदी हमें ये बताए भला इन जीवों पर बिजुली क्यों गिरनी चाहिए, और भला ईश्वर इन जीवों पर बिजुली क्यों गिराने लगे? जिनकी सृष्टि उसी के द्वारा की गई है, यदि ये जीव संसार के लाभकारी न होते तो भला ईश्वर उनकी सृष्टि क्यों करता? और दयानंद तो घास खाने वाले अहिंसक जीवों तक को मारना लिखते है, दयानंदी बताए, भला घास खाने वाले जीवों से संसार की क्या हानि है? उनके ऊपर बिजुली क्यों गिरनी चाहिए? मुझे तो नहीं लगता कि इस संसार में कोई भी ऐसा जीव है जो संसार के लिए हानिकारक है, यदि ऐसा होता तो ईश्वर उसकी सृष्टि ही नहीं करता, इस जगत् में प्रत्येक जीव एक दूसरे पर निर्भर है, और ऐसे में यदि एक जीव की नस्ल भी खत्म हो जाए तो पुरा जीवन क्रम ही बिगड जाए यही नही, इसी श्रुति में फिर आगे लिखा है कि--

(यः)- जो, (नः)- हमसे, (द्वेष्टि)- विरोध करें, (तम्)- उसको हम लोग, (एषाम्)- इन व्याघ्रादि पशुओं के, (जम्भे)- मुख में, (दध्मः)- स्थापन करें,

धन्य हे! स्वामी जी बुद्धि, स्वामी जी को तो अपने लिखें लेख भी स्मरण नहीं रहते देखिये सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में पृष्ठ १३७ पर स्वामी जी यह लिखते हैं कि "ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर

उस को स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझ को सब से बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जाये इत्यादि,

स्वामी जी के इस भाष्य से तो स्वामी जी जी का ही मत खंडित होता है, अब यदि ईश्वर ऐसी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करता तो इससे यही सिद्ध होता है कि दयानंद का यह भाष्य अशुद्ध है, अब दयानंदी स्वयं इस बात का निर्णय करें कि इसमें से कौन सी बात सही है, दयानंद का यह वेदभाष्य या फिर सत्यार्थ प्रकाश में लिखा यह लेख!

~उपेन्द्र कुमार 'बागी'